एक बनिहार का आत्म-निवेदन

सुरेश कांटक

धरती प्रकाशन

पूज्यपिता (स्व० श्री साधूशरणलाल जी) को
जो आजीवन लड़ते रहे
जूझते रहे
और सतत,
संघर्ष का पथ दिखला
गुजर गये

क्रम

किसके लिए

कलक्टरी ऑफिस के सामान्य प्रशाखा में प्रवेश करते ही पाण्डे बाबू उसकी ओर मुखातिब हुए।

'हा, ये रहा आपका नबर', वे एक मोटी सी फाइल उसकी ओर बढाते हुए बोले।

वह एकाएक हतप्रभ-सा रह गया। निमिष मात्र के लिए उसकी बुद्धि जवाब दे गई। वह किंकर्तव्यविमूढ़-सा हो गया। वह क्या करे, क्या न करे सोच में पड़ गया।

तब तक पाण्डे बाबू के शब्द फूटे—'लिखियेगा;' वे प्रश्न भरी मुद्रा मे उसे घूरने लगे।

उसके हाथ पाकेट टटोलने लगे। उसने पाकेट से कलम निकाला। कागज टटोलते हुए कोई कागज का टुकड़ा तो नही मिला, एक वेट टिकट हाथ लगी जिसे स्टेशन पर उतरते ही उसने वेट-मशीन पर खड़ा होकर उसमे दस पैसे का सिक्का डालने के बाद पाया था वह कलम खोलकर वेट टिकट पर कुछ लिखने को तैयार हो गया।

तभी पाण्डे बाबू की आवाज कानों मे टकराई—'लिखिए, अठारह सौ दस, दिनाक चौदह दस छिहत्तर।'

पाण्डे बाबू चुप हो गये। फाइल बद कर टेबुल के एक किनारे लगा दी।

वह मूर्तिवत् खड़ा कुछ सोचने लगा। मस्तिष्क मे विचारो के जाल

फैलने लगे।—'तो क्या इसी के लिए पाण्डे बाबू ने मुझे बुलाया था ? उन्हे तो रजिस्ट्री की रसीद देनी थी मुझे। वह सोचने लगा। कलम को पॉकेट मे रखा। वेट टिकट उंगलियो के बीच उलझा रहा। उसने पुन: वेट टिकट को देखा। मानो टिकट पर अंकित कोई अंक भूल रहा हो। दो-एक बार उसे उलटते-पलटते हुए मस्तिष्क मे कुछ बातें बुनता रहा। उहापोह की स्थिति जारी रही। वेट टिकट पर अंतिम सत्तावन किलोग्राम वजन उसे घटता हुआ महसूस हुआ। उसे लगा वह अपना वेजन स्वय खा रहा है। वह अपने आप मे काफी हल्कापन महसूसने लगा।

थोडी ही देर पूर्व जब उसने कलक्टरी के सामान्य प्रशाखा मे प्रवेश किया था उसे अपनी सेहत काफी स्वस्थ और गभीर लगी थी। भरपूर गंभीरता और आत्मविश्वास के साथ आगे कदम बढाते हुए, वह यहा तक आया था किंतु अब उसे अपना अस्तित्व बौना होता हुआ-सा प्रतीत हुआ। मात्र एक छोटा-सा जीव। लिजलिजा और अस्तित्वहीन। उसे लगा उसकी सारी गभीरता, पूरा स्वास्थ्य और अडिग आत्मविश्वास पाण्डे बाबू ने छीन ली हो।

तत्क्षण ही उसके बाबूजी का चेहरा उसकी आखो मे उतर आया। अपने हल्केपन के कारणो के रूप मे अपने बाबूजी को जोड दिया। उसे अपने बाबूजी के हाथ स्पष्ट नजर आने लगे।

पिछले हफ्ते ही ए० एम० सी० आर्मी सेन्टर लखनऊ से भाई का खत आया था। 'बाबू जी, अब तक मैं अधर मे हू। मेरा भेरीफिकेशन नही आया।' फला तारीख को कसम परेड हुआ। मैं उसमे शामिल नही हो सका, फला तारीख को पुन. अगले बैच का कसम परेड है। मैं उसमे भी शामिल नही हो पाऊगा। और जब तक मैं कसम नही खा लेता तब तक रिक्रूट ही रह जाऊगा। पोस्टिंग नहीं हो सकेगी। न तो सिपाही बन पाऊगा। हर माह चालीस रुपये कम वेतन मिलेगा। आप शीघ्र ही पुलिस स्टेशन से मेरे भेरीफिकेशन का पता कीजिये। जितना शीघ्र हो सके भेरीफिकेशन भिजवाइए वरना''' वरना''' वरना'''' भाई ने बहुत सारी बातें लिखी थी।

जिसे पढ़ते ही बाबू जी एकबारगी गुस्से मे आ गये थे। 'भला बताइये

साहब ! ऐसी भ्रष्ट व्यवस्था होती है। अब तक भेरीफिकेशन नही गया। छ. महीने बीत गये। कैसे सुधरेगा देश भला! चालीस रुपये कम नही होते। हर माह चालीस रुपये कम मिलेंगे। आखिर क्यो ? महेश, उन्होने उससे यानि अपने बेटे से कहा था—तुम कल ही पुलिस स्टेशन जाओ। पता करो। भाई का भेरीफिकेशन यो नही गया ? साले पैसे भी लेते है, काम भी नही करते। अलग से हाकते है इमरजेंसी है, वाह रे इमरजेंसी !'

और वह यानि महेश दूसरे ही दिन थाना मुसी के पास जा पहुचा था।

तब थाना मुसी डायरी मे आखे टिकाये खोया था।

उसने जाते ही पूछा—'हुजूर, मेरे भाई का भेरीफिकेशन था। छ. माह हो गये। अब तक नही पहुंचा।'

'कहा से आया था ?' थाना मुसी ने पूछा।

'लखनऊ से।' उसने जवाब दिया।

'भेज दिया है, फरवरी में ही चला गया।' थाना मुसी ने दुबारा कहा।

'किंतु अभी तक पहुचा नही, नवम्बेर गुजर रहा है।'

'तो मै क्या करू ?'

'कुछ रास्ता बताइये न।'

'एस. पी. ऑफिस क्यों नही जाते ? वहा से पता कीजिये। इसके अलावा मै और कुछ नही कर सकता।'

उस रोज वह घर लौट आया। मन में तैश के बुलबुले कुलबुलाने लगे थे जिसे दबाये हुए उसने सारी बाते बाबू जी को बता दी।

बाबू जी सुनते ही पुनः देश की बिगडती हुई हालात पर बिगड कर लाल हो गये—'क्या बना रखा है सालो ने देश को ? बिना घूस के कोई काम नही करते ! धत् तेरी आजादी की ! इसी के लिए लडे थे गान्ही महात्मा ! छि. छि. थुकम फजीहत कर दी लोगो ने। नाम बेच दिया उनका। ठीक है महेश, तुम अपना काम करो। कल मैं जाऊगा एस, पी. ऑफिस मे। वे बहुत देर तक बडबडाते रहे और दूसरे ही दिन एस. पी. ऑफिस जाने की तैयारी कर दी।

शाम को जब वे एस. पी. ऑफिस से लौटे। उसने बाबू जी से पूछ

दिया।

'क्या हुआ बाबू जी ? पता लगा न ?'

'हां भाई, पता क्यों नही लगता ? तीन टके की मुर्गी तेरह टका चोयाई लगा। इत्ता छोटा सा काम और बाबुओं के इतने बड़े मुह ! हद हो गया है। महक जायेगा यह देश। भगवान ना करे इस देश में कोई जनम ले। यही है सुराज ! गान्धी बाबा तुम होते तो देख लेते, अपने सुराज को और सुराजियों को। रोते-रोते मर जाते बुड्ढे। अच्छा हुआ, पहले ही गुजर गये। यह सब दुरगति नही देखा। इन्ही लोगों के लिए तुम आजादी की लड़ाई लड़े थे क्या ? धत् तेरी की ! इत्ते से काम के लिए पन्द्रह रुपये वहा भी ले लिया। खैर, चला तो गया। चालीस रुपये हर माह घाटा होता है। अब दिनेश जल्दी ही कसम खा लेगा। सिपाही बन जाएगा। अपना कुछ तो दुख दूर होगा। धत् तेरी की'''धत् तेरी की'''धत् तेरी की''' बाबू जी बड़बड़ाते हुए बहुत देर बाद चुप हुए।

दो महीने बाद फिर भाई की चिट्ठी आई। 'बाबू जी, आप लोग कुछ नही कर सकते। अब तक मेरा भेरीफिकेशन नही आया। दूसरा कसम परेड भी समाप्त हो गया। मैं कसम नही खा सका। सिपाही नही बन सका। मेरे कई साथी कसम खाकर सिपाही बन गये। पोस्टिंग भी हो गयी। अब तो कम्पनी वाले मुझे शक की दृष्टि से देखते हैं। क्रिमिनल समझते हैं। इतने दिनों से ट्रेनिंग करके बैठा हू। अब आप ही लिखें, मैं क्या करूं ? भैया से क्यों नही कहते ? मेरा भेरीफिकेशन क्यों नहीं भिजवाते'''

और बाबू जी के तेवर पुनः चढ़ गये। बाबुओं और देश के ठेकेदारों की कई पुश्तो की छलनी कर छोड़ दिये। आधे घंटे तक आजादी और गुलामी पर एकालाप करते रहे फिर बेटे के जिम्मे बात बढ़ा दी—'महेश, कल फिर तुम एम. पी. ऑफिस जाओ। एक बाबू है, नाटा-नाटा-सा। मोटा और छोटे कद का। उससे पूछना—पैसा लील कर क्यों बैठ गया ? क्यों नहीं भेजता मेरा कागज ? चूतियों की औलाद कदम-कदम पर टांग अड़ाते हैं। धत् तेरी आजादी की ! कहते हैं इमरजेंसी है ! भला बताइये साहब'''भला बताइये कैसे चलेगा यह देश !' वे बहुत देर तक बड़बड़ाते रहे।

दूसरे दिन महेश एस. पी. ऑफिस मे पहुंचा। 'एक बात बतायेंगे हुजूर ?' एस पी. आफिस के दरवाजे के अदर प्रवेश करते ही उसने पास बैठे नाटे-मोटे बाबू से पूछ दिया।

'बोलिए क्या बात है ?' नाटा मोटा बाबू उसकी ओर मुखातिब हुआ।

'आर्मी' भेरीफिकेशन कौन डील करता है ?'

'मैं ही तो, क्या बात है ?'

'लखनऊ से एक भेरीफिकेशन आया था, अब तक नही पहुचा। साल लगने को है।'

'तो मैं क्या करू ?'

'क्यो ? आप कुछ नही कर सकते ?'

'मैने कलक्टरी मे भेज दी है। आप वहा जाकर पता कीजिए।' वह बेलाग बोला।

महेश उसकी बाते सुन कसमसाकर रह गया। वह एस. पी ऑफिस का मुख्य द्वार पार कर कलक्टरी ऑफिस की ओर चल पडा।

कलक्टरी ऑफिस के बरामदे मे आकर उसने कई बार प्रशाखाओ मे ताक-झांक किया। कई एक बाबुओ से पूछा—'आर्मी भेरीफिकेशन कौन सी प्रशाखा डील करती है ?'

किंतु सबने टरका दिये।

वह बहुत देर तक यो ही पूछता हुआ घूमता रहा। अन्त मे वित्त प्रशाखा के एक बाबू ने मेहरबानी की। सामान्य प्रशाखा की ओर इशारा करते हुए बताया—'आप उसमे जाइए। उनसे बाते कीजिये। सिर क्यो खा रहे है ? बेमाने मतलब का। बिना फीस की वकालत कौन करेगा आपके लिए ?'

और वह सामान्य प्रशाखा के दरवाजे पर आकर रुक गया। दरवाजे पर लगी तख्ती को निहारा। आश्वस्त हो गया। यही है सामान्य प्रशाखा।

दरवाजे पर मोटे खादी का हरा परदा, साफ और धुला हुआ, लटक रहा था जिससे दरवाजे और प्रशाखा की प्रतिष्ठा बढ रही थी।

परदा हटाकर वह अदर चला गया।

अदर कई एक कुर्सिया लगी थी। कमरे के बीचोबीच दो-तीन बड़े-बड़े

मेज एक-दूसरे से सटाकर सजाये गये थे। उन पर फाइलो की बडलें लदी हुई थी। चारो तरफ मे कई एक कुर्सिया लगी थी। उन पर कई बाबू विराजमान थे। गप्प जारी था। राजनीतिक बहस मे लीन प्रत्येक दूसरे को मात करने की पुरजोर कोशिश चल रही थी। तर्क-वितर्क शीर्ष पर था। एक टाइपिस्ट की उंगलिया बडी चुस्ती से टाइपमशीन पर दौड रही थी। खट् खट् खट् की आवाज कमरे मे फैली बातचीत की आवाज के साथ सुर मे सुर मिला रही थी। टाइपिस्ट भी कभी-कभार रुक-रुककर इनकी बातों मे रम ले लेता था।

ऑफिस के अदर की स्थिति देख वह चौंक गया। 'नाम कपूर गध-गोबर के नाही,' कहावत मन मे घुल गई। वह सोचने लगा—'यही इमर-जैंसी है। काम कितनी चुस्ती से हो रहा है! लोग कहते हैं, कही कोई सुस्ती नहीं है। ढीलापन नही है। हर तरफ अनुशासन है। वाह! अदर कुछ और बाहर कुछ और! यहा तो बहस जारी है। गप्पें जारी है।' वह अलग-अलग बैठे एक बाबू के पास पहुचा। उनसे पूछ दिया—'कृपया बता सकेंगे, आर्मी परसनल का भेरीफिकेशन कौन डील करता है?'

'हां हां, क्यो नही?' बडे बाबू एकबारगी बोल पडे—'पाण्डे बाबू से मिलिए। तीन कुर्सियों के बाद चौथी कुर्सी पर बैठे है। मिलिए उनसे।'

वह तुरत ही चौथी कुर्सी के पास आ गया। कुर्सी पर बैठे बड़े बाबू बातचीत मे लीन थे।

'हुजूर', वह पाण्डे बाबू से बोला, 'जरा ध्यान देंगे?'

'अभी रुकिये।' पाण्डे बाबू बातो मे मशगूल हो गये।

वह पाच मिनट तक खडा रहा। फिर बोला—'हुजूर···!'

'रुकिये न। क्यो सिर खाने लगे?'

वह पुन: पाच मिनट खडा रहा। उनकी गप्पे सुनता रहा।

'मुझे और भी कई काम हैं हुजूर,' वह तीसरी बार बोला।

'आप तो मुझे तंग कर दिये। बोलिये क्या काम है?' इस बार पाण्डे बाबू झुझला कर बोले।

'एक भेरीफिकेशन का पता करना है।' महेश बोला।

'एक घंटे बाद आइये।' पाण्डे बाबू उसे टालते हुए बोले।

'मुझे और भी कई काम है। जरा कष्ट कीजिये।'

'मैं अभी दूसरे काम मे हू। बाद मे मिलिए।' पाण्डे बाबू मुह फेरकर गप्प में शरीक हो गये।

वह वही खडा रहा।

पाण्डे बाबू बातो के साथ-साथ एक फाइल उलटने लगे।

'पाण्डे बाबू, मैं यो ही खड़ा रहू क्या ?' वह उबलने-सा लगा।

पाण्डे बाबू फाइल मे खोये रहे।

'आप सुनते क्यो नही हुजूर ? मैं···।'

'क्यो परेशान करते है ? मेरी नौकरी लेंगे क्या ? मालूम नही इमरजेंसी है। काम करने दीजिये। काम का बोझ पडा है। आप जाइये यहा से। कहा न, बाद मे मिलियेगा।'

अब उसका मन तिलमिला गया। चेहरे पर सुर्खी रेगने लगी। किन्तु अपने आप को दबाये हुए सयत स्वर मे बोला—'यह भी तो एक काम है। इसे ही हल्का कर लें तो क्या हर्ज ? एक साल से लटका हुआ काम है।'

'आखिर आप मानेंगे नही,' पाण्डे बाबू झुझलाकर उठे। पास खड़े सेफ से एक मोटी सी पुलिदा उठा लाये।

पुलिदे को टेबुल पर फैलाकर वे उसे उलटने लगे। 'देखिये, कौन सा कागज है ?' उनकी आखें उसके भाई के भेरीफिकेशन को खोजने लगी।

वह पास ही खडा झुककर पाण्डे बाबू के उलटते पन्नो को गौर से देखता रहा। सबो पर विभिन्न चेहरो के पासपोर्ट साइज मैस्टीन कट फोटो लगे थे। कई एक चेहरे गुजर गये। दोनो देखते रहे।

एकाएक पाण्डे बाबू रुक गये। 'देखिये तो, यही है न ?····'

उसने भाई का फोटो पहचाना। 'हा, यही है' हामी भर दी।

पाण्डे बाबू ने उस कागज को फाइल से अलग कर दी। कागज मेज पर पसर गया।

'कब तक इसे भेज देंगे ?' उसने भाई का फ़ोटो निहारते हुए पूछा।

'अभी भेज दूगा।' पाण्डे बाबू ने जवाब दिया।

पाण्डे बाबू की बात सुन उसका मन मयूर बन गया। उसकी इच्छा हुई। इमरजेंसी को लाख-लाख दुआएं दे। मगर रुक गया। तभी उसके ओठ

खुल गये—'बहुत-बहुत धन्यवाद, पाण्डे बाबू। जल्दी ही भेज दे तो आपका आभारी रहूंगा। बेचारा साल भर से फाइल में पड़ा है।' वह ऑफिस से बाहर निकलने के लिए मुड़ा तो पाण्डे बाबू बोल पड़े।

'रुकिये, इसका खर्चा-वर्चा कौन देगा ?'

'खर्चा-वर्चा ! वह कैसा पाण्डे बाबू ?' वह चौंकते हुए बोला—'सरकारी काम के लिए खर्चा मैं दूं ! मैंने तो आपको याद दिला दिया। दस महीने से पड़ा आपका बोझ हल्का कराया।' वह निर्भीक-सा बोला।

'अच्छा ! तो ये बात है ! बहुत अच्छे शुभचिंतक निकले। बहुत-बहुत धन्यवाद। ठीक है जाइये।' पाण्डे बाबू की बातों में रोषपूर्ण व्यंग्य झलक गया।

महेश ऑफिस से बाहर निकल गया किंतु मन में संशय घुल गया।

उस रोज पूरे शहर की सड़कों से गुजरते हुए उसकी आंखें इंटेलिजेंस विभाग की तख्ती सहेजती रहीं। ताकि वह बड़े पाण्डे बाबू की बातों से उपजे संशय को उनके आगे उंडेल दे, किंतु कहीं भी उसे वह पदाधिकारी नहीं मिला। न तो अटीकरप्सन का कोई दफ्तर ही उसे दिखाई पड़ा। वह मन-ही-मन निश्चय कर कि वह पुनः पाण्डे बाबू से सिफारिश करने नहीं जायेगा। सरकारी स्तर का काम है, कभी-न-कभी भेरीफिकेशन भेजेगा, आज···कल···या परसों, कब तक फाइल में बंद रखेगा ? वह घर लौट आया।

दो महीने तक चुप बैठा रहा।

इस बीच भाई के तीन-चार पत्र आ गये। 'बाबूजी, आप लोग आखिर क्यों सोये हुए हैं ? कब तक सोये रहेंगे ? भेरीफिकेशन जल्दी भिजवाइये वरना मैं घर चला आऊंगा। कई जवान इसी तरह डिस्चार्ज हो गये। उनका भेरीफिकेशन नहीं आया। दो-दो साल भेरीफिकेशन का इन्तजार करते रहे। बेचारे तीन-तीन हजार घूस देकर भर्ती हुए थे। खटिया खड़ा हो गया बेचारों का। मेरा भी यही होगा वरना···वरना···वरना···वरना।

इस आशय की चौथी चिट्ठी आयी।

बाबू जी पढ़ते ही सतुलन खो बैठे। वे आग-बबूला हो गये। 'हे भगवान,

ाड मे झोक दो इस देश को। साले अब जीने नही देंगे। चारो तरफ डंका
ीटते हैं---इमरजेसी है, इमरजेसी है। हम सुनहरे काल की ओर बढ रहे
। काम अधिक बातें कम। हाय रे काम, हाय री बाते ! हाय रे इमर-
सी। समुर हल्ला करते है। इतने लोग बर्खास्त हुए। इतने लोग मुअत्तल
ए। आखो मे धूल झोकते है ससुर। और महेश, तुम भी अव्वल दर्जे के
र्ख हो। जीवन भर यो ही रह जाओगे। जमाना कहा से कहा जा रहा है
म्हे कुछ नही सूझता ? उस रोज वह खर्चा-वर्चा माग रहा था तो दे देते।
सद्धान्तवादी लोग भूखो मरते है यहा। उस रोज काम तो हो जाता। और
ही तो साले का गृह निकाल देते। किस दिन के लिए जवान हो ? हम
वान थे तो गोरो की रेल तक उखाड फेकते थे। बताइये भला, साल-साल
र फाइल मे कागज बद रहता है ! दिनेश डिस्चार्ज हो जायेगा तो कौन
ाला हमारी रोटी का जिम्मा लेगा ? मगर हा बच्चे, अच्छा ही किया तुमने।
मरजेसी है। समझ से काम लेना चाहिए। कल ही आरा चले जाओ। लो
स रुपये, दे देना साले को।' बाबू जी उसे डाट कर चुप हो गये।

वह डाट उसे अन्दर तक जा लगी। उसकी रगो मे चौहत्तर का खून
ग गया। बहुत सारी बातें पल भर मे उफन आई। जोगेश, रगीला,
वपुरारी और कई एक मित्रो के चेहरे आखो मे उतर आये। जेल के शिकजे
ौर खून···राइफलें···सिपाही और सडकें···लाल सडके। वह सिहर
या।

मगर फिर भी दूसरे दिन वह पाण्डे बाबू की कुर्सी के पास खड़ा था।

'बडे बाबू, अब तक मेरा भेरीफिकेशन नही गया ?' अपने अदर की
फान और आक्रोश को दबाते हुए पूछा।

'क्या ? किसका भेरीफिकेशन ?' पाण्डे बाबू अजान होते हुए बोले।

'पिछले दिनो चर्चा किया था आपसे। भूल गये क्या ?' लाख कोशिश
के बावजूद उसकी आखो मे उतरे हुए लाल डोरे पाण्डे बाबू की आखो मे
ताक गये।

'अच्छा ! याद आया। अब तक तो नही भेज पाया हू।'

'आखिर क्यो ?'

'ओफ्फ ! आप भी अजीब आदमी हैं भाई। मैं कब कहता हू नही

भेजूगा। ऑफिस मे स्टैम्प इन्वेलप हो तब तो। आखिर रजिस्ट्री होगी कैसे ?'

'कब तक स्टैम्प आ जायेंगे ?'

यह तो मैं नही बता सकता। ऑफिस की बात आप जानते ही हैं। दो रोज मे भी आ सकता है। दो महीने भी लग सकते हैं। आखिर है तो सरकारी काम। हा, आप अगर रजिस्ट्री का खर्च दे देंगे तो जल्दी ही चला जायेगा।

'कितना लगेगा रजिस्ट्री खर्च ?'

'दस रुपये दीजिये, जो बचेगा लौटा दूगा। आपके साथ-साथ किसी और का भी कल्याण हो जाय तो क्या हर्ज ?'

'लेकिन रजिस्ट्री की रसीद मुझे देनी होगी।'

'हा भई, मैं उसका क्या करूगा ? परसों आकर रसीद ले जाइयेगा।'

वह पाण्डे बाबू की बातो पर विश्वस्त हो गया। दस का नोट निकाल उन्हे थमा दिया और कलक्टरी के मुख्यद्वार से बाहर निकल आया।

और परसों यानि तीसरी बार जब वह रजिस्ट्री की रसीद लेने पाण्डे बाबू के पास पहुचा। उन्होंने उसे एक आकड़ा लिखा दिया। 'अठारह सौ दस, चौदह दस छिहत्तर', अब वह चौक पडा। अठारह सौ दस नबर सुनते ही उगलियों के सहारे टिका वेट टिकट उगलियों मे उलझ गोल-मटोल हो गया। वह कई मिनट तक खडा सोचता रहा—'क्या इसी के लिए पाण्डे बाबू ने उसे बुलाया था ? उन्हे तो रजिस्ट्री की रसीद देनी थी। जिसके लिए तीन दिन का समय नुकसान हुआ। किराये के पैसे लगे सो अलग ही। यह तो सरासर धोखा है। अन्याय है।' कई तरह के विचार उसके मन मे रेलमपेल मचाये रहे। कभी बाबू जी का चेहरा तो कभी मिश्रा का चेहरा जेहन मे उतरता रहा, उसका अन्त मन तो बेचैन हो उठा मानो कोई उसे खरीदकर अपने खूंटे मे बाध रहा हो और वह खूटे को नकारता हुआ बंधन तोड देना चाहता हो। इसी क्रम मे उसका अन्त मन कमरे मे बैठे बाबुओ के पास घूम आया—'देखते हैं न, यह अन्याय। इमरजेंसी है और ये घूस ले रहे हैं। इन्हे ठीक करवा दूगा। कम्पलेन कर दूगा ऊपर वालों तक।'

'और आप साहब अटीकरप्सन के पदाधिकारी है न ? क्यो चुप है ?' इन्हे रोकते क्यो नही ? आपके रहते ऐसी धाधली ! मुअत्तल कीजिये, अभी इन्हे इमरजेंसी मे'''।'

और आप साहब, इन्टेलिजेंस के ' और आप साहब'''और आप साहब'''।'

उसका शिकायती मन पूरे देश मे दौड आया। किंतु वह जिसके पास जाता सबके सब एक ही रग मे रगे दीखते। जितने बडे ओहदे वाले के पास पहुचता, उनकी आखें उतनी गुनी अधिक फैली होती। हाथ उतने ही अधिक पसरे हुए होते और उनका भीमकाय शरीर पाण्डे बाबू से कई गुना बडा नजर आता। सबके सब मुस्कराते, हसते हुए कहते—'हा हा हा आप कहा के वासिंदे है ? यह सब चलता है यहा। इमरजेंसी किसके लिए है ? पता है ? इत्ती-सी बात के लिए'' यह जनतत्र है न ?'

'जी हा', उसका अन्त.मन जवाब देता, 'मै इसी की जाच कराना चाहता हू। यह बहुत बडी बात है मेरे लिए—।

'जाच ! हा हा हा, जाच ! तुम ! पता नही तुम्हे, जाच छोटी-बडी बातो पर नही, छोटे-बडे लोगो पर निर्भर करता है। हा हा हा, हा हा हा।'

और हर बार वह पाण्डे बाबू के पास लौट आता। पाण्डे बाबू की सूरत उसकी आखो में उतर आती।

तभी पाण्डे बाबू उसे इस तरह खडे देख टोक पडे—'जाइये, बाहर जाइये अब क्या सोच रहे है ?'

'मेरी रसीद दीजिये। रसीद के लिए सोच रहा हू।' उसकी आवाज कडक थी।

'कैसी रसीद ?' पाण्डे बाबू उग्ररूप हो गये।

'जिसके लिए आपने बुलाया था।' उसकी आखो में क्रोध उतर आया।

'वह तो खो गई।'

'तो मेरे पैसे !'

'आपने मुझे पैसे नही दिये। आप झूठ बोल रहे है। निकल जाइये यहा से।'

'क्या ? मैंने पैसे नही दिये ?' उसने पाण्डे बाबू की कमीज पकड़ ली।

'पाण्डे बाबू गुस्से मे तमतमा गये। उनका चेहरा फक पड गया। उनके हाथ उठ गये। उन्होंने उसे एक घौंस जमा दी।

'ऑफिस मे एकाएक ही हल्ला मच गया। सभी बाबू हा-हा करते हुए जुट गये। सबके सब महेश पर हाथ साफ करने लगे।

महेश भी गुत्थम-गुथी मे उन्हे घौंस जमाता रहा। तभी प्रशासन पदाधिकारी पहुच गये। 'कौन है ?' 'क्या हुआ ?' 'क्या हो गया ?' इसी तरह के शब्दो से पूरा कार्यालय गूंज उठा।

प्रत्युत्तर मे 'गुंडा है। बदमाश है। असामाजिक तत्व है। डलवा दो इसे मीसा मे' हर ओर फैल गये।

आनन-फानन मे सशस्त्र पुलिस आ पहुची। महेश पूरी तरह घिर गया। सबके सब उस पर पिल पड़े। डंडे की मार बरसने लगी। वह कराहते हुए गिर पड़ा।

पलक भर मे पुलिस की वैन उपस्थित थी। पुलिस वालों ने उसके हाथों मे हथकड़ी डाल दी। वह पुलिस की गाड़ी पर चढ़ा दिया गया।

अगले क्षण पुलिस की गाड़ी उसे दबोचे हुए सड़क पर आतंक फैलाये दौड़ने लगी। वे उसे किसी अज्ञात जगह मे लिये जा रहे थे।

नगीना

सुबह ज्यों ही नगीना की आखें खुलती हैं, वह उठकर बैठ जाता है। फिर जैसे ही खटिया छोडता है बूढ़े खटिया की चरमराहट सारे घर मे फैल जाती है। बरगद के तने से लटके बरोह की तरह खटिया से लटकी अनेक बाधियां एकाएक झूल जाती है। वह आखो से कीचड निकालते हुए अगले ही क्षण पत्नी को आवाज देता है, 'सुनहुली, अरी उठोगी भी या सोयी ही रहोगी? आज कुछ बनाओगी नही क्या? उठकर जल्दी कुछ बना दो, तब तक मैं फराकित होकर आ रहा हू।'

थोडी ही देर बाद वह फराकित होकर लौटता है। कुल्ला-गलाली करता है और 'सो-बक्स' को लेकर बैठ जाता है। उसे पोछता है और टिकुली, सिंदूर, कनबाली, झुमका, चोटी, ऐनक और कघी आदि कई चीजो को झाड-पोछकर 'सो-बक्स' मे करीने से सजाता है। चमकीली और नयी चीजें एक ओर रखता है और कुछ छटुए सामानो को, जो मद्धिम पड गये हैं, अलग से रख देता है। इसके बाद 'सो-बक्स' को दीवार के सहारे खडा करके झोली को उठाता है, जिसमे अनगिनत चाभियो का झोझ रखा हुआ है। साथ ही एक रेती, एक हथौड़ी और एक सँड़सी भी उस झोली मे रख लेता है।

जब तक नगीना यह सब करता है, तब तक सुनहुली माड-भात बना देती है। फिर एक थाली मे माड़-भात और नमक लाकर उसके सामने रख देती है और एक लोटा पानी लाकर उसे दे देती है। नगीना हाथ-मुह धोता

है और हाऊ-हाऊ खाने लगता है। सुनहुली भी वहीं बैठ जाती है। उसके हाथ थाली के चारों तरफ भिनभिनाती मक्खियों को हांकने लगते हैं। नगीना उसे पास बैठे देखकर कहता है, 'आज मैं शिवपुर जा रहा हूं सुनहुली। पांच-छह बजे तक लौट आऊंगा, तुम एक काम करना, सिगासना की बगीचे में भेजकर थोड़ा पत्तइ बहरवाकर मंगवा लेना। शाम के लिए लकना तो नहीं है न ? मैं आऊंगा तो खरची खरीदते आऊंगा।'

इतना कहते-कहते वह पूरे थाल को माड़-भात सुड़क जाता है। फिर हाथ धोते हुए कहता है, 'और हां, न हो तो परमीन के यहां चली जाना। थोड़ा आटा या गेहूं मांग लाना। शाम को रोटी बन जायेगी। कई महीने हो गये, लगातार माड़-भात खाते। उसका कुछ टहल बजा दोगी तो उसकी पत्नी कुछ न कुछ दे ही देगी।'

फिर नगीना हाथ में 'सो-वक्स' उठाता है और दूसरे कंधे से झोला लटकाकर घर से निकल जाता है। ज्यों ही मस्जिद से थोड़ा आगे आजाद चौक के पास पहुंचता है, बबरू सिंह से उसकी आंखें लड़ जाती हैं। वह आंखें झुका लेता है और रास्ता काटकर निकल जाना चाहता है, किन्तु तभी बबरू सिंह उसे टोकते हुए बोल पड़ते हैं, 'का रे नगीनवा, आंख मिलाते शर्म आती है क्या ? यूं कट रहे हो जैसे मैंने तुम्हें देखा ही नहीं। क्या इरादा है तेरा ?'

उनकी बातें सुनते ही नगीना ठिठककर खड़ा हो जाता है। फिर कुछ पल रुककर बोलताहै, 'नहीं मालिक, आंख क्यों बचाऊं। सोचा, आज अबेर हो गया है। जल्दी-जल्दी पहुंच जाऊं।'

'ठीक ही है, जाओ। लेकिन आज कुछ इंतजाम कर देना।' बबरू सिंह आदेश के स्वर में कहते हैं।

नगीना जल्दी ही गांव से बाहर आ जाता है और हांफता हुआ गहरी-गहरी सांसें लेने लगता है। वह गहरी सोच में पड़ जाता है। बबरू सिंह की आकृति उसके दिमाग में एकबारगी खिंच जाती है।

सात-आठ महीने पहले की बात है, सुनहुली तेज जड़ैया बुखार में पड़ी थी। यों उसका सिर दो-तीन रोज पहले से ही दुख रहा था, जब परमोन की

बेटी उसे सुबह बुलाकर अपने घर ले गयी थी। उसकी मा ने उससे कहा था, 'सुनहुली, आज मेरा एक मन चूरा कूट दे। बेटी के यहा 'खिचड़ी' भेजनी है तुझे भी कुछ दे दूगी।'

हालाकि वह परमीन की टहलुआ नही थी, फिर भी उसने हां कर दी थी। जब कभी नगीना बीमार-हैरान हो जाता, परमीन की पत्नी ही उसका सहारा बनती। सुनहुली उसका कुछ काम-धाम निबटा देती है और वह खर्ची के लिए थोडा चावल वगैरह दे देती है। इन्ही बातो के चलते वह सारा दिन ढेका चलाती रही थी और फिर थहराकर खाट पर ढह गयी थी। शाम को जब नगीना फेरी करके मवई से लौटा था, तब वह बुखार से तप रही थी।

'भीतर से जी कैसा है ?' उसने सुनहुली के तपते बदन को छूकर पूछा।

'बहुत जोरो का दर्द हो रहा है। रग-रग टूट रहा है···माथा घूम रहा है।' सुनहुली रुक-रुककर कराह उठती।

तब नगीना दौडकर मगरू साह की दूकान से जोशादा की दो पुड़िया खरीद लाया था और फिर जोशादा और आनदकर की टिकिया खाते-खाते हफ्ता बीत गया। सुनहुली का बुखार कभी उतर जाता तो कभी चढ़ जाता। वह दिन-ब-दिन सूखती गयी, काली होती गयी, खटिया से चिपकती गयी।

देखते-देखते काफी दिन बीत गये। सुनहुली की हालत मे सुधार ही नही हो रहा था, और तब नगीना ने उसे अस्पताल ले जाने का फैसला किया।

झबरू सिह के यहां जाकर वह गिडगिड़ाने लगा था—'मालिक, कुछ पैसे की जरूरत है। मेहरारू की दवा-बीरो करनी है। कमाकर लौटा दूगा।'

बहुत गिडगिडाने के बाद झबरू सिंह ने लेट-बोली और उसे एक सौ रुपया दिया। साथ ही सूद की दर बारह रुपया सैकड़ा मासिक की दर से तय हुई थी। जिसे लेकर नगीना पत्नी को दवा कराने ब्रह्मपुरधाम, डॉ० सरयू वर्मा के अस्पताल में चला गया था। लगातार बीस दिनों तक सुनहुली,

की दवा-दारू चलती रही। बीच में जब कुछ पैसे घट गये, नगीना झब्बू सिंह से पुन: माग लाया था।

लगभग एक महीने बाद मुनट्टुली ठीक हुई थी और तब से यह झब्बू सिंह हर रोज उसे पैसे के लिए टोकता है। आठ महीने बीत गये। नगीना हर महीने उसे बीस रुपया देता है, मगर फिर भी मूलधन के अलावा पुन अगले महीने बीस रुपया सिर पर सवार रहता है। सूद भरने में ही हालत पचर हो गयी है। पच्चीस-पच्चीस की पूंजी में करू भी तो क्या! उसे अब पैसा दूगा भी तो कहां से? हे भगवान! हे काली माई! आज बीस रुपये का बिकवा दो, तो दो आने का बताशा चढ़ा दूगा।

अतीत की गर्द में खोया, यही सब सोचता वह शिवपुर नदी के किनारे पहुंच जाता है। तभी टीह् टीह् टीह् टी टी टी'''टी टी टी की आवाज लगाती हुई टीटहरी उसके माथे के ऊपर से गुजर जाती है। वह उसे देखते ही थुकथुकाने लगता है और टीटहरी को गालियां देता हुआ नदी पर बने लकड़ी के पुल से होकर दूसरे पार आ जाता है। उसकी आंखों तले अंधेरा छा जाता है। उसकी अपनी मंजिल कहीं नजर नहीं आती। वह बेहद गुम-सुम पुल पर से उतरता है और शिवपुर गांव की गलियों में बढ़ जाता है।

पहली गली में प्रवेश करते ही नगीना आवाज देना शुरू कर देता है 'ले लो मइया—सुहाग का सिंदूर, माथे की बिंदिया, कानों का झुमका, टिकुली, कनबाली, कंघी, रिबऽऽऽऽ्न।'

मुहल्लेभर की लड़कियां उसके इर्द-गिर्द इकट्ठा हो जाती हैं। दो-चार बूढ़ी-अधेड़ औरतें भी उसे चारों ओर से घेर लेती हैं। कोई झुमका देखती है, तो कोई रोहे-रिबन को पसंद करती है।

'यह कितने पैसे का है?'

'आठ आने का।'

'और यह वाली?'

'बारह आने की।'

'अरे जाओ नहीं,' वे झल्लाकर कहती हैं, 'ये तो चार-चार आने में मिलते हैं। रोल्ड-गोल्ड थोड़ा है। हम लोग लायी नहीं थी झझुरपुर मेले से क्या!'

'नही बहनजी, यह चार आने का नही मिलेगा।' नगीना दूकानदार के लहजे मे कहता है।

'तब ले जाओ अपना, कौन लेगा।' वे उसकी चीजे लौटा देती है। फिर दूसरा सामान मांगती हैं। उसकी कीमत पूछती है, जचता है तो खुसुर-फुसुर करके रख लेती है, वरना उसके 'सो-बक्स' पर फेंक देती है।

नगीना वहा से उठकर एक से दूसरी गली मे जाता है। कही-कही औरते ब्लाउज मे सामान रखकर खिसक भी जाती हैं। एक गली मे कदम रखते ही आठ-दस मन बिगड़े लखैरे उसे घेर लेते है। सामान दिखाने को मजबूर करते है। वह लाख समझाता है—'भैयाजी, इसमे आपके लायक चीजें नही हैं। सब औरतो के लिए है। बेकार धूप मे मुझे परेशान मत कीजिए। आपके पैर पडता हू, मुझे जाने दीजिए।'

लेकिन लखैरे उसकी एक नही सुनते। कोई उसका 'सो-बक्स' टटोलता है तो कोई झोला नोचता है। फिर दो-चार खिल्ली खैनी-चूना लेकर उसका पिंड छोड़ते है।

सारा दिन नगीना यू ही टहलता-घूमता, फेरी करता गलियो मे आवाज लगाता रहता है। जब चार-पाच बजे सूरज ढलने पर वह अपनी पाकेट सहेजता है, दस-बारह रुपये की बिक्री हो चुकी थी। बस, वह देवदार का 'सो-बक्स' उठाकर अपने गाव की ओर मुड जाता है। रास्ते भर आमद-खर्च का हिसाब करता जाता है। तभी रह-रहकर झबरू सिंह उसे पुन याद आ जाते है। वह लाख कोशिश के बावजूद उन्हे भूल नही पाता। लगातार उन्हे पैसे देने की बात याद आती है।

'ऐ नगीना!' वह पुरैना पर पहुचते ही दूर से किसी के पुकारने की आवाज सुनता है, 'अरे, जरा सुनते भी तो जाओ।'

वह पीछे मुड़कर देखता है। झबरू सिंह अपने बावन बिगहवा मे निजी बोरिंग पर बैठे उसे बुला रहे थे। उन्हें पहचानते ही नगीना बोरिंग की तरफ बढ जाता है। गले मे 'जाय रोटी' बंधे बलि स्थान पर जाते हुए बकरे की तरह वह थके कदमो आगे बढता है, मानो पैरो मे कई मन बोझ बधा हुआ हो। वह ज्यों ही बोरिंग के निकट पहुंचता है। झबरू सिंह ठठाकर

हसते हुए कहते हैं, 'बहुत मौके पर भेंट हो गयी नगीना, नही तो दोस्तों के बीच शर्मिंदा होना पड़ता। तुम्हारी ही बाट जोह रहा था।'

'ऐसा क्यों मालिक ?' नगीना फीकी आवाज में पूछता है।

'अरे पूछो मत। आज इसी बोरिंग पर दोस्तो की पार्टी चलेगी। देखते नही ये बोतलें। अभी-अभी पलटू सिंह पाच बोतल शराब रखकर गये हैं। पता नही किसकी मार लाये हैं। बस, मेरे जिम्मे एक मुर्गे का खर्च है। तू नहीं आता तो घर जाना पड़ता। सबेरे इसीलिए न कहा था। दो, माल निकालो तो।'

'माल निकालो तो' सुनते ही नगीना हतप्रभ-सा खड़ा रह जाता है। उसका दिल जोरों से धड़कने लगता है, 'मालिक, आज बिक्री-बट्टा कुछ नहीं हुआ। थोड़े पैसे का बिका भी है तो उससे खरची खरीदना है। अगले दिन ले लीजिएगा।'

'अरे, यह क्या कहने लगे। दोस्तों में लज्जित कराओगे क्या ? मैं यह सब नही जानता। अभी बीस रुपये दे दो। मैंने सुबह ही तुमसे कह दिया था। लेकिन तुम लोग किसी की इज्जत नहीं समझते। बात के आदमी तो तुम लोग हो ही नही।'

'नही बाबू साहब, ऐसी बात नही····'

'मैं ऐसी-वैसी कुछ नही जानता। बस यही जानता हू, मेरे पैसे दे दो। किसी ने ठीक ही कहा है, सीधी उंगली घी नही निकलता। देखें तो तुम्हारी थैली।'

कहते हुए झबरू सिंह नगीना की थैली में हाथ लगा देते हैं और एक-एक रुपये के बारह नोट और दो-तीन रुपये की रेजगारी गिन लेते हैं। सिर्फ दस-बारह आने पैसे उसकी थैली में शेष रह जाते हैं जिसे लौटाते हुए झबरू सिंह कहते हैं, 'लो यह थैली, पंद्रह रुपये में एक अच्छा-खासा मुर्गा मिल जायेगा। और हां, पांच रुपये और बचते हैं न, इस महीने की सूद में। दो-तीन दिनों में उसे भी दे देना। अब जा सकते हो।'

मुर्दे हाथों में अपनी थैली लेकर नगीना पाकेट में रख लेता है और पीछे मुड़ जाता है। उसकी आंखों में अब तक आंसू छलक आये। होंठ सूखकर पपड़ी बन गये हैं। चेहरा तमतमा गया है। आंखों में गुस्से का

गयी है। लेकिन वह किसी तरह अपने-आपको रोक लेता है। उसका मन गाव मे घुसने को नही करता। कई तरह के कड़वे स्वाद उसके मुह में घुलने लगते है। फिर भी वह बलात् अपने मन और शरीर को खीचकर गांव की गलियो मे सिर झुकाये गुजरते हुए अपने घर पहुच जाता है।

आगन मे आकर नगीना ज्यो ही अपना 'सो-बक्स' रखता है और चाभियोवाली थैली जमीन पर झन्न से पटकता है, सुनहुली उसके निकट पहुच जाती है। बगैर कुछ कहे-सुने चाभियोवाली थैली टटोलने लगती है। उसे थैली टटोलते देख नगीना का चढा हुआ पारा और गर्म हो जाता है। फिर झन्नाकर बोलता है, 'आते ही थैली क्या टटोलने लगी? पानी-वानी देने को नही सूझा क्या?'

'सूझा क्यों नही! सोचा, देखू क्या खरची लाये हो? किरीन डूब गया है। आग-पानी भी तो जोरना है। सबेरे कुछ बनाऊगी नही तो खाओगे क्या?'

'खाऊगा क्या, तेरा सिर? दिन भर बैठी-बैठी कर क्या रही थी? मै तुमसे कह नही गया था कि परमीन के यहा से थोडा गेहूं माग लाना। पड़ी-पड़ी खाती हो, उल्टे शान बघारती हो? कमीनी कही की!' नगीना का क्रोध सुलगने लगता है।

'देखो सिगसना के बाबू, गाली-वाली मत बको। यह कौन-सी आदत है रोज-रोज की? मैं पड़ी-पड़ी खाती हू और तुम पानी पीकर रहे हो। इतना करती नही, तो दोखज नहीं भरता। बड़े कमासुत बने हो।'

'सुनहुली! मै कहता हू चुप रह! बकवास मत कर, वरना ठीक नही होगा!'

'ठीक क्यो नही होगा? भला सोचकर कुछ कहना।'

'अरी हरामजादी, भूल गयी उस दिन वाली मार!'

'रोज-रोज की मनपरिका लगी है क्या तुझें। सोच-समझ कर मुझ पर हाथ छोड़ना। मै अपने ही लिए नही कहती हू। नही बोलती हू तो जानते हो बहुत करता हू।'

सुनहुली मधुमक्खियो की मानिंद भिनभिनाने लगती है, जिसे सुनते ही नगीना खाक हो जाता है। वह इधर-उधर नजर दौड़ाकर उठता है और

पांच-सात लात उसे जड़ देता है। फिर उसका झोंटा खींचते हुए घसीटता है, 'हरामजादी, कुत्ती ! भाग जा यहां से ! नहीं तो खून पी जाऊंगा, मुंह लड़ायेगी !—सिर फटे बेटे की, पतोहू करे काजर !'

बुदबुदाते मुनहुली को घसीटकर नगीना एक ओर खड़ा हो जाता है और मुनहुली सिसकियां भरने लगती है। साथ ही नगीना को भला-बुरा सुनाने लगती है जिसे सुनकर नगीना और सुलग उठता है। कुछ खोजते हुए इधर-उधर नजर दौड़ाता है। तभी सिमसना बगीचे से पत्तई बुहारकर हाथ में खरहरा लिये आंगन में आ जाता है। नगीना उसके हाथ से खरहरा छीन लेता है और मुनहुली के पीठ पर आठ-दस सटाके खींच देता है। मुनहुली खरहरे की मार पड़ते ही कराह उठती है, फूका फाड़कर रो पड़ती है। नगीना खरहरा एक तरफ फेंक देता है और दरवाजे से बाहर निकल आता है। सिमसना आंगन में खड़ा-खड़ा मुनहुली को निहारने लगता है।

करीब आठ बजे रात तक नगीना दरवाजे के चौखट पर घुटना बांधे बैठा रहता है और मुनहुली सिसकियां भरती रहती है। काफी अंधेरी रात हो जाती है। टोले-मुहल्ले की लालटेनें बुझने लगती हैं, किल्लियां बंद होने लगती हैं। खिल्वट-खोटों की ठकठकाहट खामोश हो जाती है। नगीना चुपचाप उठता है और घर में जाकर लेट जाता है। तभी मुनहुली आंखें पोंछते हुए उठती है और चाभियोंवाली थैली, जो अब तक आंगन में पड़ी है, खोलती है। शायद खर्ची-बरची खरीद लाये हों। लेकिन उसे कुछ खर्ची बची नहीं मिलती। तब वह एकाएक झेंप जाती है, फिर झटके से घर से बाहर निकलकर परमीन के यहां जाती है, थोड़ा माड़-भात मांग लाती है और नगीना के पास खड़ी होकर उसे जगाने लगती है।

'ए जी, सुनते हो। सो गये क्या ?'

किन्तु नगीना कुछ नहीं बोलता है। वह आंखें मूंदे चुपचाप पड़ा हुआ है। मुनहुली उसके पैर के पास बैठ जाती है और धीरे-धीरे उसका पैर झकझोरते हुए कहती है, 'उठो न, सो थोड़ा माड़-भात खा लो। इतनी जल्दी सो गये ?'

नगीना कुनमुनाते हुए करवट फेरकर सो जाता है। तब मुनहुली उसका

हाथ पकड़ लेती है। फिर उठते हुए कहती है, 'अजी उठते क्यों नही ? मैं कब से भूक रही हू और तुम बहटियाये हुए हो।'

'मुनहुली ! चली जा यहा से, नही तो ठीक नही होगा !'

'मै जाऊगी कहा ? जो भी करना है, कर लो। अब बाकी ही क्या रहा ?' सुनहुली उसके दोनो हाथ पकडकर बलात् उठाने लगती है। वह इधर-उधर कुनमुनाता है। फिर उठकर बैठ जाता है। उसके बैठते ही सुनहुली माड-भात का छीपा, अलमुनिया के लोटा में भरा पानी उसके पास रख देती है। फिर कहती है, 'लो खा लो, इसमें मेरा क्या दोष है ? सब नसीब-नसीब का फेर है। मैं तो परमीन के यहा गयी ही थी। सारा दिन तो उसी के यहा खटती रही। किन्तु आते वक्त उसने कह दिया, जाओ सुनहुली, कल कुछ दे दूगी। अब मैं करती ही क्या, लौट आयी ! सोची, तुम कुछ खरची देहात से लाओगे ही, वही बना दूगी।'

इतना सुनते ही नगीना की आखें ऊपर उठती है। पलकें तर-ब-तर हो जाती है। वह सरसरी निगाह से सुनहुली की ओर देखते हुए कहता है, 'यह खाना काहे को ले आयी। ले जा, सिंगसवा को खिला दे। मेरा जी खाने को नही करता। उसी दिन की तरह साले ने मुर्गा-शराब के लिए मेरे पद्रह रुपये जेब से निकाल लिये। नही तो खरची तो लाता ही। इन सालो ने पूरे गाव को तबाह कर दिया है। पता नही कब इन लोगो का नाश होगा।'

नगीना की बाते सुनकर सुनहुली रुआसी होकर कहती है, 'जाने दो, क्या करोगे ! भगवान ने किस्मत मे यही लिख दिया है, तो करोगे ही क्या ! देखते नही, पत्तटुआ ने आज ही रहमत का छीपा-लोटा सब उठवा लिया। कहता था, तीन बरस का सूद आठ सौ हो गया है। भगवान को भी यह सब अच्छा लगता है, तो कौन क्या करेगा !'

'नही सुनहुली, तुम भ्रम मे हो। भगवान कुछ नही करता। यह तो हमारी पैदा की हुई बुराई है। कोई दिन-रात खटता रहता है तब भी खाना नही जुटता और कोई बैठे-बैठे पेट फुला लेता है। बताओ तो, यह झबरुआ साला मेरा पैसा नही छीनता तो मैं तुझे क्यो मारता ? मुझे क्या पता था कि परमीन के यहा से तुझे कुछ नही मिला। आज बहुत मार दिया न तुझे,

दस-दस, पाँच-पाँच के नोटों को गिनकर धोती में खोंस लिया। उसकी आँखों में एक चमक उठी और वह नवादा भट्ठी की तरफ उड़ चला। उसे रास्ते की दूरी का तनिक भी अहसास नहीं हुआ, क्योंकि पैरों की गति बहुत तेज थी।

भट्ठी के अन्दर उससे पहले ही कई लोग आ चुके थे। सभी पी रहे थे और मस्त थे। भट्ठी गुलजार थी। कलुआ ने दारूवाले से एक बोतल और चुक्कड़ ले लिया। बगल से चीखना के लिए चार आने की घुघनी भी। और एक अपेक्षाकृत शांत कोने में बैठ गया। घुघनी के चंद दानों को मुँह में रख लिया और चुभलाने लगा। घुघनी चुभलाने के साथ-साथ शराब को चुक्कड़ में ढाला और गटागट गले में उड़ेल दिया। उसकी बगल में तब तक रमदेवा मेहतर भी बोतल लेकर बैठ गया था। कार्यालय के बड़े बाबू की सराहना करते हुए कलुआ ने दो-ढाई बोतल खींच लिया और उसका दिमाग सनसनाने लगा था। सामने के लोग बड़े ही ओछे, कीड़े-मकोड़ों की तरह उसे लगने लगे थे। वह शाही अंदाज में उठा, दारूवाले के पास गया और दस का एक नोट फेंक बाहर सड़क पर आ गया।

भट्ठी के भीतर की कम रोशनी के बाद बाहर की तेज-बत्तियों की रोशनी ने उसे चौंधिया भर दिया। अभी वह आगे चल ही रहा था कि सामने से ट्रक के हेडलाइट की रोशनी सीधी उससे आँखें मिलाते हुए बगल से तेजी से गुजर गई। सड़क की धूल में वह छटपटा गया। छटपटाते हुए वह चिल्लाया—"स्साला!···कौन हुए रे? ड्राइवर—धो—मिल्ला ने आके हाथ—'दम हुए तो आ··· जाऽऽ सामने।' और भी कई रिश्ते उसने जोड़े और वह आगे बढ़ता गया स्टेशन की तरफ। लोग उसकी आदत से परिचित थे, इसलिए बगल जाते थे और वह अपनी डगमगाहट को अपनी शाही चाल समझ रहा था।

भोला पान भंडार की बगल में घुमरी खड़ी कलुआ का इंतजार कर रही थी। कलुआ की आवाज सुन वह सामने आ गई। अपने आप बड़बड़ाते हुए कलुआ की नजर भी घुमरी पर पड़ चुकी थी। उसकी चाल कुछ और गड़बड़ा गई, क्योंकि घुमरी का चेहरा दुकान की हरी रोशनी में बड़ा ही मन-मोहक लग रहा था। उसके चेहरे की झुर्रियाँ भी उसे नहीं दीख रही थीं।

ट्र घुमरी के पास ही आकर रुका। घुमरी धीरे से मुस्करा पडी। जब तक वह कुछ कहती कि कलुआ ने रोबीले अदाज मे पांच-पाच के बीस नोट उसकी तरफ बढा दिये। घुमरी के नोट लेते ही उसने पूछा—'बोल घुमरी, तू क्या लेगी ? आज तुम्हारी अरमान पूरी कर दू।'

घुमरी ने कहा—'नही, लेना क्या है, आटा-दाल-तरकारी ले लूगी।'

"धतेरे आटा-दाल-तरकारी की। रोज साला आटा-दाल। आज तो कुछ और ले ले—जो तेरे मन भाये—सालन-मछली कलिया-कलेजी।' कलुआ ने घुमरी को झिडकते हुए कहा। घुमरी चुप रही। वह कुछ कहती कि कलुआ ने पाच का एक और नोट उसकी ओर बढाते हुए कहा—'तू घर चली चल। बाकी बाजार कल दिन मे कर लेना। मैं आज के लिए खरीद कर लाता हू। हा, मतार के यहा से कलिया लेती जाना। मैं जल्दी आता हूं।'

घुमरी चली गयी। कलुआ स्टेशन की ओर बढ गया। बडी मनमोहक हवा चल रही थी, जिसने फिर से कलुआ को सनका दिया। हेड पोस्ट-ऑफिस वाली सडक से गुजरते हुए वह चिल्ला पडा—'सुन लो—आज—कलुआ के पास भी नोट हैऽऽऽ नोट—सबको—दिखा—देगा—क्या जानता है—कलुआ—किसी का—क—र—ज—नही—खा—ता—'

थोडा-ज्यादा यह रोज की बात थी। उसकी बात से बेपरवाह जितने दूकानदार थे उतने ही राहगीर। दो-एक नये जरूर एक नजर कलुआ को देख लेते और अपने काम मे लग जाते।

स्टेशन के पूर्वी गेट से दो-चार दुकान पश्चिम दायी तरफ रामायण साह की दुकान पर जाकर कलुआ खडा हो गया। यो तो उस लाइन मे अधिकतर दुकाने किराना की है, लेकिन अधिकाश टुटपुजिया। रामायण साह भी टुटपुजिया मे गिना जाता था, लेकिन अब उसकी दुकान कुछ जम गयी है। बराबर कुछ ग्राहक रहते ही हैं। शाम को तो अच्छी-खासी भीड़ हो जाती है।

कलुआ भीड मे खडा हो गया। थोडी देर खडा-खडा अपने आने के मकसद पर सोचता रहा। अचानक याद आते ही वह बेसाख्ता चिल्ला

उठा—'ऐ ऽ ऽ साह जो, हमको पहले दो—एक किलो आटा, आधा पाव दाल, आधा सेर आलू और दस पैसे का तरकारी का मसाला। इसके बाद किसी और को देना।'

रामायण साह सिर के पाव तक जल गया। साला मेहतर होके नवाब की बोली बोलता है। एक नजर उठाकर देख भर लिया। कलुआ उन आखो की भाषा भी समझ गया, पर अप्रभावित ही रहा। लेकिन कुछ-न-कुछ तो बोलना ही था, वरना हर रोज के बधे ग्राहक के टूट जाने का भय था। रामायण साह ने भीतर की कटुता को दबाकर ठिठोली करने वाले अंदाज मे कहा, 'अरे, कलुआ आता है तो उड़नखटोला पर सवार होकर। जैसे घर मे कोई जवान बीबी सिंगार-पटार करके इंतजार कर रही हो। यहा तो हर किसी को जल्दी ही है, रामायण साह कोई मशीन तो नही, खालिश आदमी है। एक-एक करके सामान मिलेगा।'

रामायण साह फिर से ग्राहक की लिस्ट और तराजू-बटखरे मे उलझ गया। *कलुआ को काफी चढ़ गयी थी। खड़ा होना भी उसके लिए मुश्किल* लग रहा था। वह चाहता था कि जल्दी से सामान मिले, घर पहुचे और खाट पर चितान लेटकर आसमान मे टिमटिमाते तारो को देखे। इसलिए उसने फिर से भरी-पूरी आवाज मे कहा —''का हो ऽऽऽ रामायण साह, देते काहे नही—पहले हमको—दो—'' और एक जोर की हिचकी आई कलुआ को। बगल के सज्जन की नाक मे दारू का भभका घुस गया और हल्का धक्का भी लगा। सज्जन स्वभाव से ही चिड़चिड़े दीख रहे थे। बात-बात पर उलझने वालों की तरह, किसी भी परिणाम से बेखबर! उनसे रहा नही गया। वे बोल ही पड़े—'कौन आ गया पहले लेने? तुझे पहले दे दे! हम क्या तुम्हारी सूरत देखने आये है!'

'तुमको क्या लगती है? हम तो रामायण साह से कह रहे हैं!' कलुआ ने प्रतिवाद किया।

'अरे साले, मुह सभाल के बोल! मेहतर की औलाद चला है तुम-ताम करने। बड़ा धर है रे तुम्हारा।' उस सज्जन का क्रोध तेजी से भड़का।

'स्साला, कहेगा डोम! तुम क्या लाट साहब हो? गाली दोगे तो

फक दूगा नोट पर नोट रखकर। मेरी क्या तुससे कम इज्जत है ! मेरे और रामायण साह के बीच तू कौन है बोलने वाला।' कलुआ ने तीखे स्वर मे कहा।

सज्जन क्रोध की सात्विक सीमा पार कर गये। लगातार कलुआ की जुल्फो को पकड पाच-सात झापड रसीद किया। कलुआ कुछ भी समझ नही सका। रोज की बातो के बीच यह अचानक बिना किसी रिहर्सल के क्या टपक पडा ! कुछ नशे के कारण, कुछ आक्रमण के कारण कलुआ सभल नही सका। वह धम् से दुकान से बाहर गिर पडा। उसके पैर पास ही बह रहे नाले मे पड गये। नशे की अधिकता के कारण वह उठ नही पा रहा था, इसलिए लगातार गालिया उगलने लगा। उस सज्जन ने प्रत्याक्रमण की किसी भी संभावना की चिंता से मुक्त दो-चार लात भी कस दिये। लेकिन दो-चार लोगों ने उन्हे खीच लिया। कलुआ की ओर से निश्चिन्त जैसे किसी को भी सुनाने की गरज मे वे दहाड़ पडे।

'साले ! खाल खीचकर भूस भरवा दूगा। दो पैसा पाकर सबो से उलझने लगा। तू क्या समझता है बेइज्जती सह लेंगे। जान दे देंगे, पर इज्जत पर हाथ नही धरने देंगे। फिर कभी तुम-तड़ाक किया कि जिन्दा जला देंगे।' और लोगों के समझाने-बुझाने पर वे सज्जन चारो तरफ गर्व से देखते हुए चल दिये। रामायण साह कुछ घबडा मे गये थे। वे कुछ भी नही कह सके। तरस भरी नजरो से उस सज्जन की आखो की ओर देखने लगे, जो उनकी दुकान से लगभग दस रुपये का सौदा बिना पैसा चुकाये ही लिये चला जा रहा था —जान-बूझकर रामायण साह से नजरें चुराये।

कलुआ कही से भी समर्थन नही पाकर फुक्का फाडकर रोने लगा। अगल-बगल के दुकानदार धीरे-धीरे अपनी दुकान उठाने मे लग गये। प्रायः रोज-रोज कोई-न-कोई काड जरूर हो जाता है इस रोड मे। साधारण-सी घटना भी कोई-न-कोई कांड बन जाती है, फिर लूट-पाट मच जाती है। अचानक भीड मे से कुछ चेहरे निकलते है और हाथ-पाव के करतब दिखाने लगते हैं। भगदड मच जाती है और दुकाने लुट जाती हैं। इसलिए सब लोगों ने देखा कि कलुआ उठकर रोते हुए अपने घर की तरफ न जाकर मिनिस्ट्रीयल कॉलोनी की ओर गया, तो एक चुप्प सरगर्मी समा गयी बाजार मे। लोग धीरे-धीरे खिसकने लगे। फिर भी दो-चार सज्जन आपस

बाज

में कुछ बतियाने लगे। उनकी आवाज से खीझे दो-एक दुकानदार भी अपनी दुकान समेटकर शामिल हो गये।

कुछ देर हो गयी, कुछ नया हुआ नहीं। इसीलिए बातें करने वाले निश्चिन्त होकर शहर में बढ़ती गुण्डागर्दी और नागरिकों की बुजदिली को रोने लगे। इसी बीच मिनिस्ट्रीयल कॉलोनी की ओर से पांच-छह आदमियों की टोली आती हुई लगी। अचानक सबों के दिल धड़क गये और बातचीत धीरेन्द्र ब्रह्मचारी और संजय गांधी की होने लगी।

पास आने पर आगे-आगे कलुआ के साथ-साथ कसरती बदन को लुंगी और कुरते में छुपाये हुए एक आदमी दीख पड़ा। उसके पीछे-पीछे पांच-छह उसी की तरह के और भी आदमी थे। सभी का रुख उसी भीड़ की तरफ था, जो उस घटना के बाद रामायण साह की दुकान के सामने इकट्ठी हो गयी थी।

कसरती आदमी ने भीड़ के पास आते ही गरज कर पूछा—'किस साले ने कलुआ मेहतर को मारा है? किसने उसके पैसे छीने हैं? गरीब को तंग करने में लाज नहीं लगती! जिसने भी उसके पैसे लिये हैं चुपचाप लौटा दे, हम कुछ नहीं कहेंगे। वरना हमसे बचकर निकलना बड़ा मुश्किल है।'

एकदम सन्नाटा-सा छा गया। सबों की नजर एक साथ कलुआ पर पड़ी। कलुआ उन आंखों में रहम की याचना पाकर मुस्करा पड़ा। उसने अपनी भड़ास को निकालते हुए कहा—

'मालिक! यही सब हैं। इन्हीं लोगों ने मुझे पिटवाया है। इसमें एक और था। रुपये तो उस साले ने छीना है।'

कलुआ ने दो-तीन आदमियों की ओर इशारा किया। वे थरथरा गये। उनमें से एक ने घिघियाते हुए कहा—'सरकार! मैं एकदम अनजान हूं। यहां भीड़ खड़ी देखकर चला आया। पूरी बात भी नहीं जानता।' और वह रोने-रोने को हो आया।

कसरती आदमी ने उसकी तरफ ध्यान नहीं देते हुए कहा—'सुनो तुम तीनों आदमी! या तो जल्दी से कलुआ के पैसे वापिस करो, नहीं तो

तीनो को ठोकठाक कर बराबर कर दूगा। यहा नही, चलो मेरे साथ। किसी ने भी ची-चप्पड किया कि उसकी बत्तीसी झाडकर रख दूगा।' और वह आगे बढ़ गया। निरुपाय होकर वे तीनों सज्जन उसके पीछे हो लिये, उन के पीछे पाच-छह उसी कसरती के आदमी भी चल पडे।

कॉलोनी के आखिरी सिरे पर कुछ अधेरा रहता है। बगले कुछ दूर-दूर पर है। आस-पास कुछ बडे-छोटे पेड भी हैं, जो बंगलो की रोशनी को वहा तक पहुचने से रोक देते है।

उसी आखिरी सिरे मे वही कसरती आदमी अपने चेले-चपाटो और कलुआ काड के अभियुक्तों के साथ आया। उसने एक-एक को भर-भर नजर देख कर तौला। यदि पूरी रोशनी होती तो तीनो उसके पाव पकड-कर घिघियाने लगते। लेकिन साफ-साफ कुछ भी तो नही दिख पड रहा था। इसीलिए वे तीनो सहमे होकर भी कुछ बेफिक्र थे। कसरती आदमी को शायद महसूस हो गया कि अभियुक्तो पर अभी उसका पूरा असर नही पड़ा है। अचानक उसका दाहिना हाथ उठा और सामने खड़े एक अभियुक्त के जबड़े पर पूरी ताकत से गिरा। वह अपने को सभाल नही पाया। निश्चित रूप से उसे इसकी तनिक भी आशा नही थी। वह लडखड़ाया और उसकी झोक मे दोनो अन्य अभियुक्त भी लडखडाकर गिर पडे।

उनमे से पहले ने हिलक कर कसरती आदमी के पाव पकड लिये। सुबकते हुए उसने कहा— 'भाई साहब ! आपके पैर पडता हू। मा की कसम खाता हूं। हम लोगो ने कलुआ के पैसे नही लिये है।'

कलुआ को शह मिली। वह बोल ही पडा— 'ना मालिक, पैसा इन्ही लोगों ने लिया है। जैसे भी हो हमारा पैसा मिलना ही चाहिए।'

कसरती आदमी पर कुछ सवार हो गया। उसके दिमाग मे खलबली मच गयी। उस अकेले की जिन्दादिली के आगे तीन-तीन रहम मागते सफेदपोश लोग, जो हमेशा अप्रत्यक्ष रूप से उसे हिकारत की नजर से देखते है। लेकिन यह साला मेहतर, उस पर सवार क्यों हो रहा है। केवल पांच रुपये ही तो दिये हैं। वह उसका कोई गुलाम है ! यह एहसास ही उस कस-रती आदमी के लिए काफी था। उसने दो-तीन झापड कलुआ को ~ हुए कहा— 'चुप साले, नीच, मेहतर ! तू पीकर स्टेशन पर क्या

गया था ? बहुत गर्मी हो गयी थी क्या ? चल हट यहां से।'

कलुआ का जैसे नशा उतर गया। बहुत कुछ याद आ गया उसे। परमेसर ने ही कहा था इस साले पहलवान से बचकर रहने के लिए। साला गरीबों पर हमदर्दी दिखा कर उन्हें ही लूटता है। बड़ों के सामने तो उनका जूता चाटने लगता है।

कलुआ को महसूस हुआ जैसे वह किसी बाज के चंगुल में फंस गया हो—अकेले नहीं, तीन-तीन के साथ। जो उसी की तरह निरीह, बेचारे, किसी तरह से गुजर-बसर करने वाले हैं। कलुआ को एकाएक बहुत कुछ समझ में आने लगा। लेकिन अब क्या हो सकता है! अब तो फंस ही गया। किसी भी तरह तो बाजी जीत नहीं सकता इस बाज से। उसकी हड्डियों में तो इतना कस-बल भी नहीं है—ताडी, दारू, रंडीबाजी ने उसके जिस्म को खोखला कर दिया है। किसी भी तरह से वह पंजा नहीं भिड़ा सकता।

कसरती आदमी किसी को भी इतना अवसर देने को तैयार नहीं था। कसरती आदमी ने चाकू निकाला। उसके चेले-चपाटे और नजदीक सरक आये। एक कड़कड़ाहट के साथ रामपुरी का पूरा फल सीधा हो गया। कलुआ सिहर गया, अन्य तीनों की पीठ पर पसीना टपकने लगा।

कसरती आदमी ने कहा—'सालो! निकालो अपने पास से सारा माल-मत्ता। कुछ भी पास नहीं बचना चाहिए। वरना सबका तिया-पांच कर दूंगा। रे फकीरा! सबों की तलाशी लो—निकालो जो कुछ भी है। घड़ी, अंगूठी, रेजगारी तक नहीं बचे।'

कलुआ अपने जिस्म पर उसकी अंगुलियों की टटोल महसूसने लगा। अन्य तीनों जल्दी-जल्दी सब कुछ निकालने लगे।

•

अस्तित्वहीन

बासंती का खत पाते ही जोमधारी उछल पड़ा। वह बाग-बाग हो गया। चेहरे पर रौनक फैल गयी। मानो बहुत दिनों बाद खोयी हुई सम्पत्ति मिल गयी हो। उसने तत्काल ही खत खोला और खो गया उसी में। पास ही बैठा रामयस उससे पूछता ही रह गया—'किसका खत है भाई? मुझे भी तो बताओ।' किन्तु वह एक शब्द तक नहीं बोला। खत में खोया तो खोया ही रहा। चेहरे पर एक अद्भुत आभा चमक उठी। प्रसन्नता की एक लकीर एकाएक खिंच गई, उसके मुखमण्डल पर। लेकिन वह ज्यों-ज्यों खत की गहराई में उतरता गया उसके चेहरे की रंगत उतरती गयी। बदरकट्टू घाम की तरह कभी वह खिल जाता तो कभी मुरझा जाता। किन्तु थोड़े ही क्षण बाद चेहरे की लालिमा फीकी पड़ गयी। सारी आभा विलीन हो गई कहीं शून्य में। और विलीनता के एक अन्तिम बिन्दु पर एक दूसरी ही किस्म की रंगत चढ़ गयी। जलते-जलते बुझ जाने वाले दीये की भांति वह बिल्कुल बुझ-सा गया और डूबते सूरज की भांति डूब भी गया अतीत के अतल सागर में, तत्काल ही एक चिनगारी-सी सुलग उठी उसके अन्दर। और वह खत की अंतिम पंक्ति पढ़ते-पढ़ते बिल्कुल लाल हो गया उगते हुए गोल सूरज की तरह। और चेहरा गुस्से से भर गया। होंठ सूख गये मानो वह भीतर-ही-भीतर तप रहा हो। वह एकाएक तमतमा कर बुदबुदाया—'कैसे सहायता करूं उसकी? उस जानवर के दंश से उसे बचाऊं भी तो कैसे?'

अभी कुछ ही दिनों पहले की बात है। बासंती चुपके से चली गयी

थी। बगैर उसे बताये। बगैर कुछ कहे। किसी अनजान जगह में।

और दूसरे ही दिन 'बासती चली गयी' की चर्चा जोरदार हो गयी थी। दिन-रात बासती ही बासती। सोते-जागते, खाते-पीते। बासंती हमेशा उसे याद आया करती थी। उसी का नाम उन दिनों उसके लिए राम का नाम बन गया था। जोमधारी के साथी रामयस और तिवारी ने तो हर खिड़की के पल्ले पर और कमरों की हर किवाड़ों पर खड़िया से लिख दिया था—'बासती चली गयी।' जिसे देखकर जोमधारी और उसके साथियों को बासंती की याद ताजी हो आती थी। वे उसे भूलने की कोशिश करते ही रह जाते, किन्तु उसे भूल जाना उनके वश के बाहर की बात बन गयी थी।

बासती जिस रोज यहां आयी थी यहां के झुग्गी-झोपड़ीनुमा माहौल में एक अजीब-सी गंध फैल गयी थी। जो धीरे-धीरे जोमधारी और उसके साथियों तक में घुल गयी थी। एक विपरीत सेक्स का पड़ोसी पाकर वे सबके सब फूले नहीं समाये थे। किन्तु उनकी यह खुशी चिरस्थायी नहीं हो सकी थी। क्योंकि उनकी आशा के विपरीत बासती मात्र जवानी की उम्र ही लेकर यहां आयी थी। उस उम्र की सारी विशेषताएं उसमें अब तक नहीं आ पायी थीं और न निकलती चुलबुलाहट ही उसे कहीं से छू पायी थी। शायद ये सारी चीजें बहुत पहले ही बासंती के दुःख की तपन से झुलस गयी थीं। भरी हुई देह, दमकता हुआ सलोना मुखमण्डल और मदहोशी लिये यौवन के बदले वह सिर्फ एक सूखी चिपटी लड़की थी। जिसकी आंखें गहरी दार्शनिकता का बोध करातीं, हमेशा झुकी-झुकी-सी रहती थीं। जिसे देख जोमधारी ने पहले तो सोचा था—अभी नई-नई है, शर्मा रही है आंख तक नहीं उठाती। बाद में सहज हो जाएगी। किन्तु कुछ दिन बीतने के बाद भी बासती की बोझिल आंखें उठ नहीं पायी थीं। बल्कि और बोझिल होती गयी थीं। तब जोमधारी ने बहुत चाहा था कि कुछ पल उसकी आंखों में झांकूं। किन्तु जब कभी भी वह ऐसा करने की कोशिश करता, वह खुद बोझिल हो जाता। उसे लगता—बासती अपनी आंखों में दुनिया का सारा दुख छिपाये बैठी है। कभी उसके दिल को कुछ कुरेदने लगता। वह बासती से बात करने के लिए बेचैन हो जाता 'आखिर बात

क्या है ? जो बासती बिल्कुल मरी-मरी-सी रहती है। जिन्दा लाश की तरह। आख तक नहीं उठाती।' वह कुछ दिनो तक यही सोचता रहा था और बहुत चाहकर भी बासती से कुछ पूछने की हिम्मत नही जुटा पाया था। किन्तु एक दिन बासंती खुद हार खाकर पंख कटें पक्षी की भाति उसके नजदीक आ गिरी थी।

उस रोज सुबह ही जोमधारी नहर की ओर से टोल-डाल कर लौटा और निहाल लॉज, आरा की एक झोपडी-नुमा कोठरी मे बैठ कर कोयले के चूल्हे पर खाना बनाने लगा। कोठरी मे रहने वाले अन्य साथी अब तक नहर की तरफ से नही लौटे थे। फलतः पुआल और खजूर की चटाइया जैसी की तैसी बिखरी पड़ी थी। दस बजे से क्लास अटेन्ड करना था, अतः उसने झटपट तसला मे पानी डालकर अदहन बैठा दिया और चावल मे मिले छोटे-छोटे कंकडो को चुनकर चावल धोने बैठ गया। जब तक कि अदहन खौलता उसने चावल को मल-मल कर धोया। और दस-पन्द्रह आलू गिनकर लाया। उसे भी मलकर धोया और अदहन मे डालने के लिए रख दिया। उस दिन का खाना उसने माड-भात और चोखा बनाने का सोचा था। हालाकि माड-भात, चोखा, खिचडी और फुटेहरी इस लॉज मे रहने वाले सभी विद्यार्थियो का प्रमुख भोजन था। जिसे समय बचाने के लिए ही वे बनाया करते थे। ताकि बनाने-खाने के बाद पढने-लिखने को भी पर्याप्त समय मिल सके। थोड़े समय बाद अदहन खौल उठा और जोमधारी ने धोया हुआ चावल उसमें डाल दिया। कोयले की आच काफी तेज थी। तुरन्त ही भात उबलने लगा। जोमधारी ने उसे कलछुल से चलाया और चावल के एक दाने को दबाकर देखा। भात पक चुका था। उसने एक छोटे तसले में चोखा के लिए आलू डाला और माड़ पसाने बैठ गया। माड़ अभी पतली धार से गर्म भाप लिये पीतल की थाली में झन-झन की आवाज करता गिर ही रहा था कि एक पतली सुरीली-सी आवाज उसे सुनाई पडी:—

'भैया, एक चीज मागूं ?'

जोमधारी ने मुडकर दरवाजे की ओर देखा। बासंती सहमी-सिमटी-

सी सिर झुकाये, दरवाजे की ओट लिये खड़ी थी। उसे देखते ही जोमधारी भौंचक रह गया। बासती आज यहां कैसे चली आई? सोचते हुए आत्मीयता-पूर्ण शब्दों में पूछ पड़ा—

'कौन, बासती! अरी क्या बात है? क्या चीज मांगने आई हो?'

'थोड़ा सा माड़ चाहिए भैया।'

'माड़! क्या करोगी माड़ का?'

'कुछ काम है भैया।'

'कलफ चढ़ाना है क्या?'

'नहीं भैया, कुछ दूसरा काम है।'

'ठीक है, ले जाना।'

जोमधारी ने कह दिया किन्तु तत्काल ही सोचने लगा—बासती को माड़ ले जाने को तो कह दिया; किन्तु मैं कैसे खाऊंगा? माड़-भात तो मुझे भी खाना है। खैर'''कोई बात नहीं, एक रोज यों ही खा लूंगा। पता नहीं, वह किस काम के लिए माड़ ले जायगी। जोमधारी अभी सोच ही रहा था कि पास खड़ी बासती पुन बोल पड़ी—

'ले जाऊं भैया?'

'अभी ही।'

और बासती चुप रही।

'ठीक है, ले जाओ।'

जोमधारी ने माड़ ले जाने को कह दिया और बासती माड़ की थाली उठाये, मानो अमृत पा गयी हो, झटपट चली गयी।

उस रोज जोमधारी ने चोखा-भात खा लिया और हाथ में बैंगनी कॉपी लेकर कालेज की ओर चल दिया। *सारी राह गुमसुम चलता रहा।* आरा प्लेटफार्म पार कर देवरिया लाँज से ज्यों ही आगे बढ़ा और एच० डी० जैन कालेज के कैम्पस में पहुंचा। दस बजे की पहली घण्टी टनटनायी। वह तेजी से बढ़कर 'एकम' हाल में घुस गया। फिर तो एक के बाद एक चार घण्टियां गुजर गयीं। लेकिन उन घण्टों में क्या पढ़ाया गया जोमधारी उससे बिल्कुल अछूता रहा। सारा दिन बासती उसके मस्तिष्क में छाई रही।

चार चालीस की घण्टी ओवर होने के बाद वह मनहूस-सा छुपी निगाह बासंती को तलाशता अपने कमरे मे आया। पैजामा-कुरता खोला और लुगी पहनकर सुबह से पड़े जूठे बर्तनो को साफ किया। फिर हाथ मे लगी कालिख को, जो भाग्य-रेखाओ के साथ चिपकी हुई थी तौलिया से पोंछने लगा। तभी बासती दुबारा उसके पास पहुची और उसने पूछा—

'शाम को क्या बनाओगे भैया ?'

'क्यो, कुछ काम है क्या बासती ?' जोमधारी ने पूछा।

'नहीं, यो ही···।'

'सोचता हू फुटेहरी बना लू।' जोमधारी ने कहा।

जोमधारी के ये शब्द सुनकर बासती उल्टे पाव लौट गयी और जोमधारी सतुआ आटा जुटाने मे लग गया।

इसी तरह चार-पांच रोज व्यतीत हो गये। हर सुबह बासती आती। भैया कहती और माड की थाली उठा ले जाती और जोमधारी उसे यो ही देखता रह जाता। वह रोकना चाहकर भी उसे रोक नहीं पाता और न कुछ पूछ पाता। बासती ज्यो ही माड़ लेने आती, उसकी आखें उसे घूरने लगती। वह लगातार उसका चेहरा पढना शुरू कर देता। किन्तु लाख प्रयत्न के बावजूद भी कुछ समझ नहीं पाता और बासती वापस लौट जाती।

जब बासंती माड लेकर चली जाती जोमधारी अपने आप को कोसने लगता। उसे अपनी भूख की झिझक शान्त करनी पड़ती और वह चोखा-भात खाकर कालेज चला जाता।

किन्तु यह क्रम अधिक दिनो तक नही चल सका। तीन-चार रोज के बाद ही बासती के प्रति जोमधारी के भाव बदलने लगे। सच ही है, अपने सिर आग लगी तो दूसरे को कौन देखता है ? वह सोचने लगा—कल से बासती को माड नही दूगा। हर रोज उसे माड देकर बेवकूफ बनना पड़ता है। छूछा भात खाते अच्छा नही लगता। फिर एक दिन की तो बात नहीं। अपने को भी तो पढ़ना-लिखना है। किन्तु पेट मे गुद्दी न रहे तो कुछ नहीं अच्छा लगता। ठीक ही कहा है—'भूखे भजन न होहिं गोपाला।' नहीं···

नहीं अब सोच लिया, कल से वासंती को माड नहीं दूंगा। दूंगा भी तो खाने भर माड रख लूंगा। वह भी गजब की लड़की है। पता नहीं हर रोज माड का क्या करती है। पूछने पर कुछ बताती ही नहीं। उसे तो खुद सोचना चाहिए कि थोडा-सा माड इसके लिए भी छोड दूं। कम-से-कम माड का निचला हिस्सा जिसमे माड पसाते समय भात भी गिर जाता है, उसे छोड ही देना चाहिए।

लेकिन वासंती को क्या पता कि जोमधारी भी माड-भात ही खाता है। वह तो जानती थी कि जोमधारी कालेज मे पढ़ने वाला लड़का है। अच्छी तरह खाता-पीता होगा। उसे तो इन बातों का जरा भी अहसास नहीं था कि जोमधारी एक गये-गुजरे घर का लडका है और बाबू से सैकडों वादे करके कालेज मे पढ रहा है। उसके बाबू चार रुपये रोज पर काम करने वाले मजदूर है। अपनी कमाई को देखकर ही उन्होंने जोमधारी का नाम कालेज मे लिखाने से इन्कार कर दिया था। किन्तु जोमधारी ने बाबू के आगे झरनों के पानी की तरह आंसू बहाये थे और अपने स्कूल के एक मास्टर से कहलवाया था—कि जोमधारी बहुत तेज लडका है। अव्वल दर्जे से पास किया है। बहुत होनहार है। इसका नामाकन करवा दीजिये। तब उसके बाबू पिघले थे और किसी से कर्ज-गुलाम लेकर भविष्य की आशा में उसका नामाकन करवा दिया था। नामाकन के बाद जोमधारी सालो भर रघुनाथपुर से आरा तक डेली पैसेंजर करता रहा था। किन्तु जब जाडे का दिन आया तब हावड़ा-मुगलसराय पैसेंजर बहुत तड़के रघुनाथपुर स्टेशन पर आने लगी। उसे काफी दिक्कतें महसूस हुई। कई-कई घण्टियां छूट जाने लगी। तब वह आटा-सत्तू लेकर आरा की इन झुग्गी-झोपडियो मे रहने लगा। जब से यहां रहता है, अपने हाथों खाना बनाता है, एक ही कोठरी में छीपा-बर्तन, तसला-बाल्टी, चूल्हा-चक्की सब कुछ। उसी मे लेवा गुदरा किताब कॉपी, बिल्कुल कबाडखाने-सी जिन्दगी जी रहा है। वासंती को इन बातों का यदि कुछ भी पता होता वह जरूर जोमधारी के लिए थोड़ा माड छोड़ जाती।

अगले दिन वासंती ज्यों ही माड़ लेने आयी जोमधारी उससे पूछ पड़ा—

'बासंती, एक बात पूछूं, बुरा तो नही मानोगी न ?'

'कौन सी बात भैया ?' बासंती आश्चर्यचकित होकर उसकी ओर देखने लगी। पुन सकोचपूर्ण शब्दो मे बोली—'नही, बुरा क्यो मानूगी। जो मालूम होगा—बताऊगी ही।'

'तो एक बात बताओ, तू यहा आने से पहले कहा रहती थी ? तुम्हारा अपना घर कहा है ? वह बूढी जो तेरे साथ उस झोपडी मे रहती है, तेरी कौन है ? तुम्हारे और कोई है या नही ?' जोमधारी ने एक ही साथ कई प्रश्न पूछ डाले।

'तुम इसे जानकर क्या करोगे भैया ? दबे हुए जख्म को मत उकेरो। मुझे ही मेरे दुखड़े ढोने दो।' बासती ने अनुरोध किया।

'नही बासंती, आज तुम्हें यह सब बताना ही पड़ेगा। तभी माड ले जा सकोगी। मैं बहुत दिनो से यह सब पूछने की सोच रहा था। आज बिना बताये माड नही दूगा।'

जोमधारी ने जोरदार शब्दो मे कहा और बासती कुछ देर ठिठक गयी पुनः रुआंसी होकर बोली—'भैया, मैं इसी कस्बे की रहने वाली हू। मेरे बाबू इसी नगर के बासिंदे थे। एक छोटा-सा घर था अपना। अब वह अपना नही रहा। मेरे बाबू उधर आयरन देवी की तरफ एक छोटी सी दूकान करते थे। उनके बाबू क्या करते थे, मुझे नहीं मालूम। उन दिनो हमारा परिवार पाच-छ सदस्यों का था। हम दो बहनें थी दो भाई थे, और दो माई-बाबू। उन दिनों जब बाबू जीवित थे, किसी तरह खा-पीकर दिन कट जाते थे। बडी बहन और बडे भैया पढते थे। मै भी तब पढती ही थी। मुझे अच्छी तरह याद है भैया, जब मैं सात वर्ष की थी बडी बहन की शादी हुई थी पच्चीस पार कर जाने के बाद। लड़का खोजते-खोजते बाबू के कई जूते टूटे। अततः किसी तरह शादी हुई और बडी बहन अपनी ससुराल चली गयी। तब से अब तक उससे मुलाकात नही हुई। मां कहती है, बड़ी बहन की शादी मे डाड टूट गया। बहुत तिलक दहेज देना पडा। लोगो के तीखे ताने ने जो बींध डाला था। तब बडे भैया कालेज मे पढते थे। शायद आई० ए०मे होगे। मैं भी तब तक पढती ही थी। लेकिन बाद में मेरी पढाई छूट गयी। भैया तो किसी तरह बी० ए० कर गये।' बासंती अभी अपनी

घर में नजर दौड जाती और कलेजा उफन कर मुंह को आ जाता।' इतना कहकर बासती पुन फफक उठी।

'इसीलिए न कहती थी भैया, कि दबे घाव को मत कुरेदो। उसी दिन से हम लोग विस्थापित हो गए। दूसरे मुहल्ले की एक कोठरी में किराये पर रहने लगे। तभी से भैया की आंखों की नींद गायब हो गयी और वे दिन-ब-दिन ढहते चले गए। हर रोज सुबह ही वे यहां से निकल जाते हैं और रात को दस-ग्यारह बजे लौटते हैं। मा और मैं तब तक उनका इन्तजार करती हू जब तक वे लौट नहीं आते। जब कभी भैया रात को नही आते, आखों तले अधेरा छा जाता है। मां अपने को रोक नही पाती वह तुरन्त ही रोने लग जाती है। अब तक कितनी कोठरियों को पार करके हम लोग यहा आये हैं भैया'''मुझसे मत पूछो।

'यहा जब से आयी हू तुम देख ही रहे हो भैया। और हां, सच पूछो भैया, तो मुझे माड से कोई दूसरा काम नहीं रहता। आपसे जो माड ले जाती हू, वह खाने के लिए ले जाती हू। मैंने तुमसे झूठ बोला था, इसके लिए क्षमा करना। उसी माड के सहारे हम लोग टिके हुए हैं। शुरू-शुरू में तो कई रोज भूखे रह गए। तुमसे कुछ कहने की हिम्मत नहीं हुई, किन्तु यह पेट शैतान कब मानने वाला है! आतें दुखने लगी तो तुम्हारे पास चली आई। यही सोचकर कि माड आप फेक ही देते होंगे। भैया, उतने ही माड में थोडा माड़ मां पीती हैं, थोड़ा मैं पी लेती हू और निचला हिस्सा जिसमें थोड़ा भात भी गिरा रहता है, भैया के लिए रख देती हू। वे रात गये जब उधर से आते है तो खा लेते है वरना मा-बेटी खाकर सो जाते हैं। हम लोगों पर ऐसी विपत्ति आ पडी है कि भैया को कोई ट्यूशन तक नहीं देता। लोग कहते हैं—तुम क्या पढ़ाओगे। खुद टी० बी० के पेसेण्ट मरि-यल टट्टू हो। पहले सेहत ठीक करो अपनी। इसमें मेरे भैया का दोष ही क्या है? बाबू जब तक जिन्दा थे, उन्हें देखते ही बनता था। चार-पांच साल पहले से बिना खाये-पिये जो सड़क पर दौड़ता रहे, उसका शरीर कैसा होगा भैया? उन्हें क्या पता, हम किस विपत्ति के मारे हुए हैं।'

जोसधारी बासती की कहानी सुनता रहा और बीच-बीच में उबलते आलू को टो-टो कर देखता रहा। जब आलू सीझ गए बासती की कहानी

भी खत्म हो चुकी थी। उसने चूल्हे पर से आलू की तसली उतारी और उसे छीलने लगा। छीलते ही छीलते वह बासती की कहानी मे पुन: खो गया। उसकी आखे तपने लगी। वह एकाएक भावोन्मेष मे बह गया। पुन: आकाश की ओर देखा। गनेश राइस मिल की ऊची चिमनी लगातार काला धुआ उगल रही थी जो गहरे काले बादलो की तरह पूरे आकाश मे छा रहा था और सूरज को ढकने लगा था। पास ही छज्जे के नीचे हजारो बोरे चावल की छल्लिया लगी हुई थी। उसे लगा ये छल्लिया प्रतिपल बढती आ रही है गोजर की टागो की तरह। और थोडी देर बाद वह गोजर रूपी छल्लियो के नीचे दब जाएगा और बासती की तरह अस्तित्वहीन हो जाएगा। किन्तु तभी बासती की आवाज ने उसे ठोस धरातल पर ला पटका। उसने अचकचा कर देखा। बासती पास ही खडी पूछ रही थी—

'माडवा ले जाऊ भैया?'

'हा ले जाओ···लेकिन सुनो, थोडा माड मेरे लिए भी रख दो।' उसने कहा—

'तुम भी माड खाते हो क्या भैया?' बासती पूछ पडी।

'हा बासती, मैं भी माड ही खाता हू। तुम्हारी तरह मैं भी···।'

'तो पहले क्यो नही कहा, हर रोज तुम्हारे लिए भी थोडा माड छोड जाती। इतने दिनो तुम्हें बहुत तकलीफ हुई होगी, मेरे कारण। मुझे माफ कर देना।'

और दूसरे क्षण ही एक कटोरे मे थोडा माड रखकर बासती पूरी थाली का माड उठा ले गयी।

उस रोज जोमधारी रात भर नही सोया, न पढा। सारी रात पड़े-पडे टकटकी लगाये सोचता रहा। बासती के लिए कुछ-न-कुछ जरूर करना होगा। वह अब और भूखे नही रह सकती। लेकिन मुझ एक के सोचने से क्या होगा? खैर···सब लोगो से कहूगा। यही सोचते-सोचते वह सो गया। लेकिन ज्यों ही उसकी आखे लगी। उसने देखा कि बासती पुन: उसके पास आयी है और हंस-हस कर उसे जगाते हुए कह रही है—'देखो न भैया, मिल वाले ने मुझे पांच बोरे चावल दिया है। अब मैं तुमसे माड लेने नही आऊगी। अब तुम्हे छूछा नही खाना पडेगा। चलो, तुम भी ले लो। सेठ

कह रहा है—मैं खाने से अधिक नहीं रखूगा। सब गरीबों मे बांट दूगा। वह वासती की बातों का विश्वास नहीं करता है और बार-बार उससे पूछता है—'सच वासती, सचमुच ऐसी बात है?' तभी कौवों की काव-कांव ने उसके कानों को छेद दिया। और उसे भोर होने का आभास हो आया। वह झटपट उठ बैठा और विस्फारित नेत्रों से खिड़की की राह गनेश राइस मिल की लम्बी-चौड़ी कैम्पस मे निगाहें दौड़ायी। वे ही छल्लिया। वही चिमनी। वे ही मजदूर। चेहरे पर निराशा लिये उसने ऊपर की ओर देखा—चिमनी मे वही काला धुआ निकल रहा था जो उगते हुए सूरज की स्वर्णिम रश्मियों को जमीन पर आने मे रोक रहा था और अभी भी चारों तरफ अंधेरी कालिमा फैली हुई थी।

थोड़ा दिन चढते ही जोमधारी ने अपने सभी मित्रों को बुलाया और वासंती की पूरी कहानी उनसे कह सुनायी। पुन उनको सलाह देते हुए कहा—'देखो भाई, आज से वासती हम लोगों का खाना बनाएगी। इसमे दो फायदे होंगे, वासती को भी कुछ सहारा मिल जाएगा और हम लोगों को भी पढने-लिखने का समय मिलेगा। हम दस साथियों के खाने से, वह अच्छी तरह खा सकती है।'

और सभी मित्रों ने उसके प्रस्ताव का समर्थन कर दिया। फिर तो उसी शाम से वासती निहाल लॉज मे रहने वाले दस विद्यार्थियों का खाना बनाने-खिलाने लगी। जब वे सब लोग खा लेते, वासती बचा हुआ खाने मे अपना खा लेती और अपने भैया और बूढी मा के लिए रख देती।

यह क्रम पाच-छः महीने तक चलता रहा। जोमधारी और उनके साथी वासती पर पूरी तरह आश्वस्त हो गए। उसे बहुत सहानुभूति देने लगे और वह इनके परिवार की-सी हो गई।

ये सारी घटनाए खत पढ़ते ही जोमधारी की आखों मे नाचने लगी। वह भीतर से बहुत उमस महसूस करने लगा। कई बार खत को खोला और पढ गया—'भैया, मैं आपके कस्बे से बहुत दूर एक नगर में आ गई हू''' मेरे भैया एक सज्जन के घर ट्यूशन करते हैं'''और मैं उनका चौका-बर्तन'''लेकिन यह सज्जन जानवर निकला'''मुझसे अनुचित करने लगा

है'''और मेरे भैया उसके ऐहसान तले दबे हैं'' मैं अब किससे कहूं?''' सहायता मांगू? संभव हो तो इस जानवर के दंश से बचा लो'''बहन की लाज रख लो।' इतना पढ़ते ही जोमधारी की आंखें सुर्ख हो गयी और वह गहरे आक्रोश से भर गया।

अब और नहीं

दरअसल मेरे गाव के लोग ऐसे हैं ही, जिनकी आदत अब तक उल्टा सोचने की रही है। हालांकि उन्हें भी कभी-कभी रामबदन का निर्णय सही प्रतीत होता है। लेकिन मात्र दिमागी स्तर पर ही। वे जो सोचते है, करने की प्रक्रिया मे बदलना नही चाहते। करने की बात मात्र से ही इनका रोआ सिहर उठता है। फिर भी वे यह बात भली-भाति जानते हैं कि रामबदन उनके गाव का एक हज्जाम है। उसका बाप रामपाल काफी बूढा हो गया है। आखो पर मोटे लेंस वाला चश्मा डाले हमेशा चबूतरे पर डोला करता है। अब उससे न कुछ काम होता है और न किसी की बेगारी ही। सारी जिंदगी वह बेगारी करता रहा। उसी मे अब तक अपनी हड्डी गला दी। जी-हजूरी करते हुए अपनी जुबान घिस डाली। और उसी जी-हजूरी के बदले दो बीघा जमीन उसके जिम्मे पडी रही। जोत-बो कर वह अपना परिवार पालता रहा। साथ ही किसी तरह रामबदन को भी पढाया-लिखाया।

किन्तु बात मात्र इतनी ही नही कि जी-हजूरी के बदले बाबू लोगो ने रामपाल को दो बीघे जमीन दे दीए और रामपाल उसे जोतता-बोता रहा। जी-हजूरी तो रामबदन के बाबू का उपरियार काम था। इसके अलावा वह हर रोज सुबह ही कैंची-छूरा लेकर बाबू लोगो के दुआर पर पहुंच जाता। उनके पूरे परिवार का 'हजामत' बनाता। दाढी छीलता। नाखून काटता। अगर दाढी, बाल बढे नहीं होते तो उन्हें अच्छी लगने वाली दो-चार बातें कहता। पैर दबाता। गांव-घर का हुलिया पहुंचाता और उन्हें सलामी दाग कर 'लोखर' को फटे चिथडे मे लपेट हथेली मे दबा

घर की राह लेता।

गाहे-बेगाहे उनके श्राद्ध और विवाह उत्सवो में उसकी व्यस्तता देखते ही बनती। ड्यूटी करकस हो जाती। सुबह से शाम तक आम के पल्लव जुटाने से लेकर रात दो बजे तक 'अइगा-बिजे' कराने तक उसे कई बार पूरे गाव का चक्कर लगाना पडता। बाग-बगीचो की दौड लगानी पडती।

इसी रोजमर्रे मे रामबदन हज्जाम की कई पीढियां बीती। परदादा के जमाने से मिली हुई दो बीघा जमीन की पैदावार वे खाते रहे। उसके बाबू भी पीढियो से चली आ रही लीक पर खूब उत्साह के साथ चले। किन्तु 'सुगा और सेमर का फूल' वाली बात हुई। उनका बुढापा आ पहुचा। उन्होने अपनी लीक रामबदन को पकडा दी। वह बचपन से ही छूरा पकडना, कैंची चलाना, और नहरनी से नाखून काटना सीखने लगा।

ज्यों-ज्यों रामबदन की उम्र बढती गई, रामपाल उससे सन्तुष्ट होने लगे। उसने बहुत कम उम्र मे ही छूरा-कैंची चलाना सीख लिया। और जब तक उसकी पामिया निकली वह बाबू लोगो के खुरदरे खुतियो (दाढियो) पर हाथ फेरने लगा। 'त्रिभुवानी मोहरा कट' से लेकर अमेरिकन कट हजामत बनाना भी सीख लिया।

बचपन के दिनो में जब रामबदन के बाबू बडकी दुआर पर जाते उसे भी साथ ले लेते। जब कभी वे कटनी के दिनों मे मगिया करने के लिए बधार की ओर निकलते, रामबदन भी उनके साथ हो लेता। धान कटते खेतो मे उसके बाबू लोगों के पैर दबाते, सिर मालिश करते, उनका गतर-गतर पडकाते, वह एक धुधली-सी उहापोह मे पड जाता। जब पैर दबा लेने के बाद उसके बाबू को एक 'अटिया' धान मिलता और उसे काख तर दबाकर जब वे अपने घर चलते, रामबदन अपने बाबू से पूछ पड़ता—'बाबू, तुम उसके नौकर हो क्या ?'

'किसका ?'

'उसी खेत वाले का !'

'नही तो।'

'तो उसके पांव क्यों दबा रहे थे ?'

'क्या करू बेटे ? वे लोग मालिक हैं। हम लोग उनकी परजा।'

'नही बाबू, तुम झूठ बोल रहे हो। स्कूल के मास्टर साहब कहते हैं, दुनिया मे कोई किसी का मालिक नही, न कोई किसी की परजा है। सब काम करते हैं। सब खाते हैं। और जो काम नही करता उसे खाने का अधिकार नही है।' रामबदन अपने बाबू को पूरे विश्वास के साथ वर्ग मे पढी हुई बातों को सुनाता तो उसके बाबू गद्‌गद हो जाते। अपने छोटे बेटे के मुह से इतनी बडी बात सुनकर उनका मन बदल जाता किन्तु तुरन्त ही वे बात बदलने के लिए कहते—

'अरे हा बेटे, यह तो है ही लेकिन'''।'

'अब यह लेकिन क्या, बाबू ?'

'उन लोगों ने जमीन भी तो दी है, हमे जीने-खाने के लिए।'

'वह किसकी जमीन है, बाबू ?'

'उन्ही लोगों की है। कई पुश्तो से हमे दिए है। पहले रेहचट था किन्तु उस समय मेहनत करके हम लोगों ने खेती लायक बना लिया।'

'तो उन लोगों ने पाव दबाने के लिए ही जमीन दी है न ?'

रामबदन बाबू से ज्यो ही यह बात पूछता, उसके बाबू लज्जित हो जाते। हालाकि अपने छोटे बेटे के आगे लज्जित होने का कोई कारण नहीं होता। फिर भी पता नही क्यो, जब भी पांव दबाने की बात रामबदन अपने बाबू से पूछता, वे झेंप जाते। तब तक वह पुन पूछ देता—

'बाबू, तुम बहुत खराब आदमी हो।'

क्यों बेटा ?'

'तुम जमीन क्यो नही लाए ?'

'कहा से जमीन लाता ?'

'अपनी मा के पेट से।'

'हु हु हु, अरे बेटा, मा के पेट से कोई जमीन थोडे लाता है। यह तो ईश्वर की दी हुई मुफ्त की चीज है। तुम बडे नटखट हो।'

'तब तो इस पर सबका बराबर हक होना चाहिए न बाबू ? तुम क्यों दो बीघे के लिए उनके पैर दबाते हो ? उनकी बेगारी करते हो ? हजामत-दाढी बनाते हो ? गाव भर की हुलिया पहुंचाते हो ? दिन-रात खटते हो।

जी-हजूरी करते हो। और नही तो मा-बहिन की गाली सुनते हो। वह जमीन तो ईश्वर की मुक्त देन है।' रामबदन एकाएक इतनी सारी बाते बाबू से पूछ बैठता।

'बेटे, तुम बहुत बच्चे हो। चुप रहो। बाद मे समझ जाओगे।' उसके बाबू उसे चुप करा देते और रामबदन अनेक अरमान लिये अपनी जुबान बन्द कर लेता।

कई साल गुजर गए। रामबदन के बाबू दो बीघे जमीन का ऋण चुकाते रहे और रामबदन पाठशाला की पढाई छोडकर हाई स्कूल मे जा पहुचा। इसी बीच उसके बाबू भी अधेड़ावस्था की दहलीज पार कर बुढापे की जर्जर कोठरी में जा पहुचे। शारीरिक तब्दीलियो ने उन्हे दैनिक कार्य करने मे भी असमर्थ कर दिया। आखे जवाब देने लगी। हाथ हिलने लगे। सिर बुरी तरह कांपने लगा। पूरे शरीर की चमड़ी लटक गई।

अब बाबू लोगो की तावेदारी रामबदन को ही करनी पडती। न चाहते हुए भी उसे अपने आप को बाबू लोगो के दुआर पर पहुचाना पडता। तब उसका मन उसे खूब धिक्कारता—'क्यो रामबदन, कहा गई तुम्हारी वे बाते? बचपन मे बडी-बडी बाते बनाता था। बेगारी और जी-हजूरी के नाम पर भडकता था। अब तो आ गया न पिंजड़े मे?' किन्तु बचपन से अकुरित उसके मन रूपी खेत मे डाले गये बीज मुरझाने वाले नहीं थे। बस देर थी तो सिर्फ रोशनी और नमी की, जिसे पाकर वह विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लेता।

हाई स्कूल मे पढते हुए रामबदन ने अपने बाबू से कन्नी काटना शुरू कर दिया। हर रविवार को वह घर से लापता रहने लगा। ताकि उसके बाबू उसे बडकी दुआर पर दाढी-हजामत बनाने के लिए न भेज सकें। किन्तु बाबू भी कब मानने वाले थे? वे किसी तरह उसे पकड़कर समझाते—'देख बेटा, अपना तो धंधा पुश्तैनी है। दादा-परदादा भी बाबू लोगो की सेवा करते रहे हैं, तो हमे करने में क्या लगा है। फिर तो यह धंधा छोड देने से हमारी गुजर कहा? बाबू लोग अपना खेत ले लेंगे। तब कैसे हमारा भोजन चलेगा? कैसे परिवार पोसाएगा? कैसे तुम

अब और

पढोगे ? मेरा तो सपना है, तुम्हे कालेज पास करा दू। तू मेरी बातों का बुरा मत मान। जो कहता हू करता चल।' उसे घंटो समझाते।

'नही बाबू, उन लोगो का व्यवहार मुझे नही जचता। हमेशा रे कह्के पुकारते हैं —'का रे नउआ, हेने आव, पानी ले आव, खइनी बनाव, रामपलवा नीके बानू।' इसी तरह की बाते वे हमेशा करते है। अपने छोटे से छोटे बच्चो को भी 'का हो बबुआ जी' कहते हैं और तुम जैसे बूढे व्यक्ति को 'का रे नउआ' कहते हैं। हमसे यह बोली बरदाश्त नही होती। उनके दुआर पर। खेत ले लेंगे तो ले लें। मैं किसी बाजार में सैलून खोलकर कमाऊगा।'

'सैलून खोलने के लिए भी बहुत पैसे चाहिए बेटे, तुम नही समझते अभी। अपने पास तो कौडी काभी भी नही। मैं बूढा हो गया। आखें मद्धिम हो गई। किसी तरह कुछ और पढ लो तब ये सारी बातें सोचना। जा जा, चले जा बड़की दुआर पर। आज एतवार है। दवरी-मिसनी कटिया-पीटिया सब बद है। वे लोग आसरा जोह रहे होंगे।'

और तब रामबदन मरीजों की तरह घुटने टेक कर अनमने-सा उठता। खोखर उठाकर बाबू दुआर की ओर चल देता। सारी राह अब लौट जाऊ, बाबू से कोई बहाना बना दू आदि बातें सोचता रहता।

ज्यो ही वह बाबू दुआर पर पहुचता। 'का रे नउआ ?' शब्द से उसका स्वागत होता। 'बड़ा देर से चलले हा रे ?' प्रश्न होता।

'देर त कवनो नइखे भइल जी।' वह जवाब देता।

'अच्छा ठीक बा। देख त लोटा मे पानी बा ऽ। ले ले आव ना तनी दउरि के।'

तब रामबदन कुआ पर से पानी लाता। सुबह से ग्यारह-साढ़े ग्यारह तक उनकी चमड़ी चिकनी करता। हजामत, दाढ़ी,नाखून, मालिश। एक के बाद एक का नम्बर लगा रहता जिनके गुरदरे गालों पर रामबदन की अंगुलियां घूमा करती और उस्तरे की बारीक धार काली-काली खूटियों का सफाया किया करती।

दाढ़ी बनाते हुए अक्सर रामबदन को लोग छेड़ते—'का रे नउआ,

तोरा बाप के का हाल बा ?'

'ठीके बा।' रामबदन छोटा सा उत्तर देता।

'निरोग बा नू ऽ ? बेचारा जीवन भर सेवा कइले बा। अब त बूढा गइल। तें का करबे ओतना। तें त का जाने कवन फारसी पढ़त बाडे कि मठुआ गइल बाड़े।'

'का करी स्कूल से फुरसत मिले तबे नू।'

'स्कूल में पढके कवन जज कलट्टर हो जइबे ? दू बिगहा खेत काहें खातिर दिहल बा। ई सब न करबे त खइबे का ? खेत लौटावे के पड जाई।'

यह बात सुनते ही रामबदन के तन-मन में आग लग जाती। वह भीतर-ही-भीतर उमस कर रह जाता। जी में आता उसी उस्तरे से तत्काल उसकी गर्दन उतार ले। किन्तु कुछ सोच-समझ कर और इधर-उधर कुछ लोगों को बैठे देख सहम जाता। फिर तो क्रोध से पागल हो खूब जोरों से उनका गाल मीचना शुरू कर देता। जब उनकी चमड़ी दुखती। वे कराह कर पूछते—'का रे नउआ, जान ले लेबे का ? क पुश्त के खीस निकालत बाड़े ?'

'ना सरकार-दाढी फुलांवत बानी। बहुत कडा केश बा।' और वह बहाने के लिए लोखर से पत्थर निकाल उस पर उस्तरा घिसने लगता।

बारह बजे तक बैठे-बैठे जब उसके घुटने पीराने लगते, कमर टूटाने लगती, वह उठकर दोनों पैर झाड़ता, कमर सीधी करता और लोखर को चिरकुट में लपेट घर आकर दतुवन पानी करता। साथ ही उनकी कई पुश्तों की बखरी उधेडता और बाबू पर रोब झाड़ बैठता।

स्कूल के दिन बीत गये। रामबदन हाई स्कूल पास कर गया। तभी एक बवडर खडा हो गया। यह बवंडर उसकी बिरादरी के लोगों ने खडा किया, जिन्हें बाबू लोगों ने उकसाया था। रामबदन और उसके बाबू की राय थी कि रामबदन कालेज में दाखिला लेगा। किन्तु बाबू लोगों की राय थी कि रामबदन अपने बाप-दादा के पेशे में रहे, हजामत-दाढी बनाये ताकि उनके द्वारा दी गई जमीन के बदले उसमे सेवा करायी जा सके वरना वह जमीन दूसरे नाऊ को देकर उसी से काम कराया जाय। और उसकी

बिरादरी वालों के मन में दो बीघे जमीन की लालच घिर आई। वे इस तिकड़म के लिए दौड़-धूप करने लगे। बाबू लोगो के दरवाजे पर हाजिरी देने लगे।

इधर रामवदन के बाबू के साथ यह मुसीबत आयी कि रामवदन जब कालेज में पढ़ेगा तो उसका खर्च कहां से आयेगा? हजामत बनाना छूट जायेगा। खेत जिसे दादा-परदादा के जमाने से जोत रहे है, बाबू लोग ले लेंगे। परिवार पोसाएगा कैसे? बड़ी विषम स्थिति थी। एक तरफ भविष्य का निर्माण और दूसरी तरफ वर्तमान की भूख! कैसे क्या हो? रामपाल माथे पर हाथ दिये सोच रहे थे। किन्तु रामवदन कुछ और सोच रहा था—'जो जमीन हमारे चार पुश्तो से कब्जे मे रही, उसे कोई कैसे ले सकता है? इस बीच कई बार सर्वे हुआ। मेरे बाप-दादे के नाम खाता खुल गया होगा। खतियान मे यह जमीन उनके नाम चढ़ गयी होगी। मैं उसे छोड़ नहीं सकता। खेत भी जोतूगा। बेगारी भी नही करूगा। देखता हू कौन मुझे कालेज मे पढ़ने से रोकता है?

किन्तु खेत वाले भी इतने कच्चे खिलाड़ी नही थे। जब भी भूमि सर्वेक्षण होता, वे उस जमीन पर निगरानी रखते। उसे अपने नाम मे दर्ज कराते। कभी-कभी तो खेत को बदल कर उसे जोतने को देते। गांव की अन्य गैर मजरुआ जमीनों पर भी उनकी नजर टिकी रहती। जिसे अपने खाते मे लिखवाने से वे नही चूकते। गांव की चौहद्दी के अन्दर अब तक जितनी भी गैरमजरूआ आम जमीनें थी, सबको उन लोगो ने अपने नाम करा लिया और बाद मे उसे बेच कर या बन्दोबस्त कर पैसे कमाये। फिर तो रामपाल की जमीन से उनकी आखें विचलित होती भी तो कैसे? रामवदन को इन सारी बातों की जानकारी नहीं थी। वह अपनी कालेज की पढ़ाई के लिए पुरजोर प्रयास मे था। लेकिन उसके बाबू इन सारी बातों मे वाकिफ थे। और इसीलिए जब उनका बेटा मैट्रिक पास हुआ, उन्हें खुशी तो हुई किन्तु वह खुशी तुरन्त ही एक गहरी सोच मे बदल गई। वे दिन-रात चिंतित रहने लगे। बेटे को कालेज मे पढ़ाने की मुराद अलग जोर मारती थी और बाबू लोगों की गुलामी एव खेत छूट जाने से पेट की पुकार एक अलग मजबूरी पैदा करती थी। क्या करें, क्या न करें। वे त्रिशकु की भांति लटक रहे थे।

खैर'''जो हो, रामपाल ने कुछ पैसे जुटाकर कुछ कर्ज-गुआम लेकर रामबदन को कालेज में दाखिल करा दिया। वह कालेज के लिए डेली पैसेंजरी करने लगा।

बाबू लोगों को जब यह खबर मिली तो उन्होंने रामपाल को बुलवाया। उससे कहा—

'रामपाल, हम अपनी जमीन लें रहे है, कल से खेत पर मत जाना।'

'क्यों मालिक, क्या गलती हुई हमसे ?'

'गलती क्या हुई। तुमसे तो अब दाढ़ी-हजामत का काम होगा नहीं। तुम्हारा बेटा भी कालेजियत हो गया। हम उस जमीन को बिरछू हज्जाम को देकर उसी से काम करायेंगे।'

'लेकिन हुजूर, उसे मेरे पाच-छ पुश्तों ने जोता-बोया है।'

'तो क्या हुआ ? वह जमीन तो हमारी है। जो हमारा काम करेगा वही जोते-बोयेगा।'

रामपाल का चेहरा उड गया। अब वह क्या जवाब दे ? कुछ सूझ नही रहा था। 'तीन दिन की मुहलत दीजिए मालिक, इसके बाद कुछ कीजियेगा।' उसने उनसे निवेदन किया और घर आया। शाम को जब रामबदन कालेज से आया, रामपाल ने बातें शुरू की।

'रामबदन, बाबू लोग अपनी जमीन ले रहे हैं। अब क्या होगा ?'

रामबदन ने सुना तो उसकी भवें तन गई। वह कसमसा कर बोला— 'मेरी जमीन वे कैसे ले लेंगे ? उसका कागज-पत्तर है कि नही, आपके पास ?'

'नहीं, सब कुछ उनके पास है। जमीन तो उनकी है। कागज-पत्तर मेरे पास कैसे रहेगा ?'

'छ पुश्त से आप उसे जोत रहे है आपके नाम नही चढा ?'

'नहीं।'

'तब तो कानून भी हमारा साथ नहीं देगा।' वह चुप हो गया।

'देख बेटे, घबराने से काम नही चलेगा। हाथ जब मूसल से दब जाता है तब घबरा कर जल्दी से खीचने मे कट जाता है। उसे धीरे-धीरे निकालना ही अक्लमन्दी है। हमारा-तुम्हारा साथ देने वाला भी कोई

नही । तमाम लोग तो उनके तलवे सहलाते हैं । तुम घबराओ नही । तुम जो चाहते हो जरूर पूरा होगा । थोड़ा धैर्य से काम लो । हफ्ते में दो दिन अपने पेशे के लिए निकाल दो । बाकी दिन कालेज जाओ । बस, दो दिनो में उनकी दाढी-हजामत कर दिया करो । गुंजाइश इसी में है । साप भी मरेगा और लाठी भी नहीं टूटेगी ।'

रामबदन अब भी चुप था । किन्तु उसका चेहरा लाल हो गया था । आखों मे धुध समा गया था । वह मन-ही-मन बुदबुदाता रहा । पल भर बाद बोला—'किन्तु बाबू, दो बीघे जमीन के लिए यह गुलामी मैं नही कर सकता । उनकी बोलिया मुझे बर्दाश्त नही होती । उससे अच्छा तो वही मजूरी करके खाना है । वे साले मुझे पढ़ने देना नही चाहते ।'

'देख रामबदन, तुम उन्हे गाली मत दिया करो, सुन लेंगे तो बहुत बड़ी मुसीबत आ जायेगी ।'

'तुम बेकार डरते हो बाबू, और मुझे भी डराते हो । अब मैं उनसे डरने वाला नही । मजबूरी मुझे भले ही लाचार कर दे और मुझसे गुलामी करवाये । लेकिन एक वक्त आ रहा है बाबू, अगर जिंदा रहना तो देखना, गुलामी की यह जजीर, मजबूरी की यह बेबसी और शोषण का यह शिकंजा टूट कर ही रहेगा ।'

और फिर तो रामबदन हफ्ते में दो दिन कालेज छोड हजामत बनाने के लिए बडकी दुआर पर जाने लगा ।

अब वह जब भी बड़की दुआर पर जाता, लोग उसे बरबस परेशान करते । चाहे दाढी बढी हो या नही, केश बढे हों या नही, उससे कैंची-छूरा जरूर पकडवाते । घंटों मालिश करवाते । कुछेक उस पर बोली बोलते— 'हमारा नाऊ कालेजियट है, हम ऐसे-वैसे नाऊ से काम नही करवाते । बी० ए० में पढता है हमारा नाऊ । अब यह ग्रेजुएट हो जायगा । क्यो रे नउआ, बात तो ठीक कह रहा हू न । चल, इसी बात पर थोड़ा पैर दबा दे ।'

रामबदन कुछ बोलता नहीं । भीतर-ही-भीतर उमसता रहता । एक ज्वालामुखी उसके अन्दर-ही-अन्दर खौलती, जिसे वे भलीभाति भापते रहते ।

अक्सर जब रामबदन खा-पीकर कालेज जाने के लिए तैयार होता,

कोई नौकर आकर कहता—'मालिक दाढी बनाने के लिए बुलाये हैं। उन्हे तुरत बाहर जाना है। जल्दी चलो।'

तब रामबदन के जी मे आता कि जा कह दे, मुझे पढ़ने जाना है। आज फुर्सत नही है। किन्तु अपनी सोची हुई बाते वह कह नही पाता। बाबू की सूरत उसकी आखो मे नाच जाती और वह किताबे रखकर लोखर उठा बडकी दुआर की ओर चल देता।

किन्तु यह सिलसिला अधिक दिनो तक नही चला। वह अपनी भावनाओं को और अधिक नही दबा सका। एक रोज ज्यो ही वह कालेज के लिए घर से निकला। बाबू साहब का बनिहार सामने खडा था। उसे देखते ही बोला—'मालिक बुलाये हैं। हजामत बनाना है। चलो जल्दी।'

'जाओ कह दो', रामबदन के मुंह से निकल पडा, 'मैं नही आऊगा। मैं उनका गुलाम नही कि जब जो कहे, करता रहू। अपना खेत लेना है ले ले। हमसे यह गुलामी नही होगी। मैंने अपना सैलून खोलने की व्यवस्था कर ली है।'

बाबू के बनिहार ने जो सुना तो उसे ठक् मार गया। कुछ देर तक वह रामबदन को घूरता रहा। और जब रामबदन स्टेशन की ओर चल पड़ा, वह बडकी दुआर की ओर बढ गया।

दिनचर्या

भाई साहब जरा ध्यान दीजिए—मेरी एक बात सुनिए

यो तो बहुत दिनों से सोच रहा हू, अपनी दिनचर्या सुनाने को। किन्तु समय ही नही मिलता। मिलता भी है, तो कोई सुनना नही चाहता। सुनता भी है, तो ध्यान नहीं देता। सच पूछिए तो किसको फुर्सत है, ध्यान देने की ? सब के सब अपने आप मे सिमटे है। जो जहा है, तबाह हैं। रोजी-रोटी की चिंता ने सबको तबाह कर रखा है। दिन कमाया रात खाया, रात कमाया दिन खाया। दूसरे की बातें सुनने-समझने का वक्त कहां। आपके पास भी वक्त नही होगा फिर भी कुछ देर कष्ट कीजिये। मेरी दिनचर्या सुन लीजिये, वरना मैं तड़फड़ा कर मर जाऊगा, भीतर ही भीतर उमस कर रह जाऊगा।

हां, तो पहले मैं अपना नाम बता दू। आपको समझने मे सुविधा होगी।

मेरा नाम नदू साह वल्द चंदू साह ग्राम कांट थाना ब्रह्मपुर जिला भोजपुर है। अपने गाव मे ही रहता हू। अपने गाव में ही कमाता हूं। अपने गाव मे ही खाता हू और लोगो की तरह कमाने-खाने कही परदेश नही जाता।

अब मेरी दिनचर्या सुनिये। मगर ध्यान से, तभी समझ पाइयेगा। मेरी बुद्धि की कमाल, मेरी खुशहाली का राज। मेरे फैलते अस्तित्व की कहानी ?

मैं हर रोज अनमुनहे ही जाग जाता हू, ऐसी बात नहीं। अनमुनहे जागते हैं मेरे गाव वाले किसान, जिन्हे खेती-बारी करना होता है। या

मजदूर, जिन्हें हल-कुदाल चलाना होता है। मुझे तो अधिक रात तक जागने की बीमारी है, और अधिक रात तक नींद नहीं आने के कारण सुबह में आँखें लग जाती है। सूर्योदय तक सोया रह जाता हूं।

फिर भी अल्ल सुबह ही कुछेक मुझे बरबस जगा देते है। कुछ देर और सोने की इच्छा रहते हुए भी पलग छोड देना पडता है। जी तो करता है, जगानेवाले की सात पुश्त की ऐसी-तैसी कर दू, किन्तु गाव की बात होती है, आंखें मलते हुए दरवाजा खोल देता हू।

दरवाजा खुलते ही देखता हू। कोई आदमी चपरासी की तरह मेरे दरवाजे पर खडा है। बिल्कुल चपरासी की तरह ही समझिये। डरा हुआ-सा या सहमा हुआ-सा। मानो रात को चोरी की हो और सुबह माफी मागने दौडा आया हो। ऐसा करने वाले की सूरत अलग-अलग होती है। कभी कल्लू राम के मुहल्ले वाले तो कभी बिलटू महतो के मुहल्ले वाले तो कभी मुशीलाल के मुहल्ले वाले तो कभी झगरू सिंह के मुहल्ले वाले मतलब यह कि मेरे गाव के हर कोने के लोग मुझे जगाने वालो में से होते है।

अब शायद आप यह समझ रहे होगें कि मै बन रहा हू। नही मेरे भाई, मैं बनतू आदमी नही हू। आप बिल्कुल सच मानिये। हा, एक बात जरूर है। जब जैसा तब तैसा वाला मुहावरा मुझे अच्छी तरह याद है। मैं उनका प्रयोग भी अच्छी तरह समझ-बूझ कर करता हू। ये जितने भी लोग मेरे दरवाजे पर आते है, मेरी गरज से नहीं आते। मेरे दरवाजे की पहरेदारी करने भी नही आते। सब के सब अपनी गरज के मारे होते है, और न चाहते हुए भी मेरी पसद की बाते करते है। चाटुकारी करते है। हां में हां मिलाते हैं। मैं सबकुछ भलीभाति समझता हूं।

खैर—मैं तो कह रहा था आखें मलते हुए जब मैं अपने दरवाजे पर आकर पूछता हूं कौन है भाई? क्या बात है? किधर चले आए, सवेरे-सवेरे?

मैं बिलटू हूं, राम हू साहु जी। या मैं गुदरी लाल हू साहु जी। या मैं बिलर महतो हूं साहु जी। जो भी दरवाजे पर खड़े होते है, नाम बोलते हैं, आप से ही काम था। बडा चैन काट रहे है, आजकल? ये मेरी मनःस्थिति बदलने के लिए चुटकी लेते हुए बोलते है।

'क्या करूं'? भाग्य भर ही भोग होता है। यही क्या कम है?'

'थोडा चावल दीजिए न साहु जी।' वे अत्यधिक नम्र होकर कहते हैं।

'चावल तो नही है।'

'गेहू ही दे दीजिये थोडा।'

'उहु।' मैं जानबूझ कर नकारता हू।

'तब कैसे काम चलेगा साहु जी ? आज खरची नही है।' वे चिन्तातुर होकर बोलते हैं मानों वे बोलते नहीं उनकी लाश काप रही हो।

'किसी दूसरे के पास देखो, मिल जाये तो ले लो।'

'नकद पैसे जो नही हैं, कुछ दिनो मे दे दूगा।'

उनकी लाचारी सुनकर मुझे थोडा बल मिलता है और इस लाचारी से फायदा उठाने के लिए जी मचल जाता है किन्तु अपने आपको रोकता हू और यह जानते हुए भी कि मै उनको जरूरत भर गेहूं या चावल दे सकता हू, एक माह क्या, छ. माह तक उनका मोदी-खरचा चला सकता हू और बदले मे हैडनोट बनवा सकता हू या मकान लिखा सकता हू। ऐसा तो अब तक बहुत कर चुका हू। उन्हें कुछ और मजबूर करते हुए कहता हू।

'मैं तुम्हारी मदद नहीं कर सकता, भाई। कहीं और देख लो।'

'नही साहु जी, मेरी इज्जत रख दीजिए। बच्चे भूखो मर जायेंगे।' वे गिडगिडाते हैं और तत्काल पैर पकड लेते है।

'अब मैं क्या करता ? भीतर मे प्रसन्नता की उफान बलवती हो उठती है किन्तु उसे दबाये हुए कहता हू—'मेरे पास सिर्फ अपने खाने भर चावल है। दो दिन बाद देख ले जितना चाहोगे, दे दूगा।'

'उसी मे से थोडा दे दीजिए। बडी कृपा होगी।' वे पुनः गिडगिडा हैं।

'दर जानते हो ? उसकी कीमत काफी बढी है। तुम्हे तो साधारण चावल चाहिए न ?'

'क्या दर है, साहु जी ? जरा दिखाइए न।'

तब मैं अदर जाता हू और सबसे साधारण किस्म की चावल की एक मुट्ठी बानगी लाकर उन्हे दिखाता हू और बाजार के दर से तीस रुपये क्विंटल अधिक रख कर दर बताता हू। दो सौ रुपये वाला चावल दो सौ तीस रुपये क्विंटल और दो सौ पचास वाला दो सौ अस्सी का बताता हूं।

'आय,' बाप रे', वे सुनते ही कनकनाते है। अंदर तक कांप जाते है और फिर कुछ सोच कर झनझनाकर शांत हो जाते है।

तब मैं उनके चेहरे का रंग देखता हू। मिनटो मिनट मे कई एक रग चढते हैं और उतरते है उनके चेहरे पर। कभी सुर्ख लाल, कभी ताबई तो कभी पीला मुरझाये हुए फूल-सा। जब उनके चेहरे का रग सुर्ख लाल होता है, मेरा मन आतकित हो जाता है। सच कहू तो भय की एक लहर भी सिहरन की तरह नस-नस मे दौड जाती है। किन्तु तत्काल ही उनका रग पुनः बदलना है और मै इत्मिनान की सांस लेता हू।

'ठीक है साहु जी, तौल दीजिये,' तीसरा रग चढते ही वे कहते है।

'अब मेरी बांछे खिल जाती है। मरता क्या न करता ? बेचारे बाजार-दर जानते हुए भी मेरी मनमानी कीमत चुकाने को तैयार हो जाते है। मैं तराजू और पनसेरा उठाता हूं। डडी मे कुछ कम भी तौलू तो उन्हे कोई उज्र नही होती। पेट की भूख किसी तरह अनाज पाने के लिए उन्हे बेचैन किए रहती है। वे मरते-मरते जीते है और जीते-जीते मरते है। चावल पाकर घर की राह लेते है।

ऐसा तो तब होता है जब नान्ह टोली का कोई आदमी या एकाध बीघा खेत वाले लोग हमारे पास आते है। बिचबिचवा लोगो के साथ यानी पाच-दस बीघा वालो के साथ भी मेरा यही सलूक रहता है। हा, नौकरी-पेशा वाले लोग तो पूरी तरह मेरी चंगुल मे होते हैं। उन पर तो मेरी पकड़ काफी सख्त होती है। दामों भी अधिक रखता हूं। चालीस रुपये अधिक कीमत वसूल करने पर भी वे चू तक नही करते। हालाकि कनमनाते जरूर है, किन्तु कुछ बोलते नही। महीने भर का राशन बद कर दू तो माहवारी मिलते-मिलते सुरधाम पहुच जायेंगे। मनीआर्डर और बीमा की राह देखते-देखते अइठा कर साफ हो जायेगे।

किन्तु मेरे गाव मे नौकरी-पेशा वालों की सख्या बहुत कम है। अधिकांश लोग दो-चार बीघा वाले किसान है। जो गाइयों हू भैंसिगे हू वाले हैं। जो कहता हू, मान लेते है। काम से फुर्सत कहां, जो बाजार मे जाकर बाजार-दर समझें। मेरी बात ही मुहर होती है उनके लिए।

एक बात और है। इन पाच-दस बीघा वाले किसानों से मुझे दुहरा

फायदा भी होता है। एक तो, उनसे चावल-गेहूं बेचकर पौ बारह करता हू। दूसरे, जब उनकी फसल तैयार होती है—चाहे वह खरीफ फसल हो या रबी फसल हो—वे आख मूदकर मेरे पास चले आते हैं। उन दिनो तो देखते ही बनता है। तमाम छोटे-बडे किसान मेरे दरवाजे पर डेरा डाल लेते हैं। भिनसारे से शाम के धुधलके तक। मुझे बीस रुपये की जरूरत है, मुझे एक सौ की जरूरत है। मुझे फला का कर्ज चुकाना है, मुझे फलां का बकाया देना है, मेरा पाच मन तीसी ले लीजिए। मेरा चालीस मन गेहू तौल लीजिए। मेरा दस मन धान खरीद लीजिए। मुझे चना बेचना है।' बस यही रट सुनेंगे आप। और सबके सब अपने आप मे आपा-धापी किये रहते हैं। 'पहले मेरे यहा चलिए तो पहले मेरे यहा चलिए।'

और तब मेरी बन आती है। मनमानी दर पर गाव भर का अनाज खरीद लेता हू मेरा घर भर जाता है। तुर्रा यह कि बिना पैसे दिये हुए। दस-दस, बीस-बीस, दे-देकर। दो-चार महीने की करारों पर हजारों हजार का अनाज भर लेता हू फिर तो अब दर मेरा होता है। अनाज मेरा होता है। जिस भाव से बेचू लोग लेगे ही। खुद अनाज बेचने वाले दो-चार महीने के बाद खरीदना शुरू करते है, जब घर का अनाज खत्म हो जाता है। मोदी-खरचा मैं ही चलाता हू।

लोग कहते हैं, भाग्य कुछ नही होता। किंतु मैं तो पूरे विश्वास के साथ कहता हूं। भाग्य भी कोई चीज है। भाग्य भर ही किसी को भोग होता है। नही तो, सालो भर धूप, जाडा और वर्षा मे खेतो मे खटता है कौन ! और जब उपज होती है, तो घर भरता है मेरा। वह भी बिना मूल्य चुकाये। सबको पूरे पैसे एकबारगी तो देता नही। उन्हीं का अनाज बेचकर धीरे-धीरे थोडा-थोडा करके लौटा देता हू। कुछेक लोग तो इतने भोले हैं कि कुल पैसे देने पर भी नही लेते। कहते है, खर्च हो जायगा। जरूरत पडेगी तो ले जाऊगा। बेचारे बैंक का नाम सुनकर ही भड़कते हैं, 'कौन जाय दिन-दिन भर आफिस अगोरने ?'

और बस, दूसरे की पूजी मेरी पूजी होती है। दूसरे की कमाई से मेरा घर भरता है। वाह रे भगवान ! गजब तुम्हारी महिमा बडी अपार है। धन्य हो तुम।

हा, तो भाई साहब मैं कह रहा था इसी बीच एक चालाकी मैं और करता हू। अनाज के ढेर तौलने के लिए 'बाया' का काम मुझे ही करना पड़ता है। उस में भी कुछ मार ही लेता हू। किंतु यह बात कोई जानता नही। सिर्फ आप से बताता हू। किसी से बताइएगा नही। अगर कह भी दीजिएगा तो मुझे डर नही। मेरे सिवा इस गाव मे है ही कौन जो यह सब करे?

इस गाव मे मुझे मात करने वाला सिर्फ एक व्यक्ति है। और वे है लहठन सिंह। गाव मे उन्ही की तूती बोलती है। गाव भर को कर्ज गुआम देते हैं। उनका घर तो सालो भर अन्न से भरा रहता है। बीस-बीस हजार मन उपज काटते है। खेत भी सबसे अधिक उन्ही के है। पूरी की पूरी उपज घर मे रख देते और सावन-भादो मे बेचते है। उनके पास अपना ट्रैक्टर हैं अपना थ्रैसर है। अपना पंपिग सेट है। अपना ट्यूब वेल है।

खैर, छोडिए मैं दूसरो की बातें नही करता। प्रसगवश याद हो आया तो कह दिया। मुझे तो सिर्फ अपनी दिनचर्या सुनानी है। आपका समय व्यर्थ नष्ट क्यो करूं? फिर भी लहठन बाबू से मुझे काफी ताल-मेल रहती है। दोनो आदमी मिल-जुलकर ही अपनी गोटी लाल करते है। आप इसे झूठ मत समझियेगा। बात बिलकुल सच कहता हू। झूठ बोलकर कौन पाप मोल लेने जाय? लहठन बाबू मेरी बडी मदद करते है। बदले मे मैं भी उनकी बिगडी बाते बना देता हूं; तभी तो हम दोनो जब जो भी चाहते हैं, कर लेते हैं।

आप समझते होंगे, मैं हाक रहा हूं। नही भाई साहब, मैं डीग हाकने वाला व्यक्ति नही। मैं तो अपने गांव मे चीनी, राशन और किराशन का डीलर भी हूं। जिसमे लहठन बाबू की मदद मुझे मिली थी। पैसा मेरा था और पैरवी उनकी थी। वरना कोटा का लाइसेंस बनाना टेढी खीर है। लहठन बाबू की पहुच बी. डी. ओ. से लेकर कलक्टर और मिनिस्टर तक है। तभी तो इसमे भी मेरी मनमानी चलती है। जिसे जितना चाहूं, देता हूं, नही चाहूं, नही देता हू। फिर भी गाव के एकाध खुराफाती लोगो को, रोब-दाब वाले लोगों को, चोर-चापलूसो को विशेष ध्यान मे रखता हूं शेष लोगों को दूं तो भी ठीक, नही दू तो भी ठीक। तनिक-सा कड़ा रुख

मेरी दिनचर्या है। ऐसी बहुत सारी बातें भूल गई हैं किंतु मोटे तौर पर मैंने अपना छोटा-सा परिचय दे दिया। आप तो खुद समझदार है। अब विदा लेता हू। आपने मेरी दिनचर्या सुनने के लिए समय दिया, इसके लिए धन्यवाद ! आप सब कुछ समझ ही गए होंगे, मगर इसके लिए धन्यवाद क्यो दू ?

पपिया

आसाढ़ चढ़ गया तो मुसहरी के लोगों में एक नवीन उमंग भर आयी। बच्चे-बच्चे की जुबान पर बड की पुजाई की चर्चा फैल गयी। चंदा-बेहरी वसूलने की योजनाएं बनने लगी। प्रत्येक मुसहर अपने चंदे की राशि को चुकाने की चिंता में चंचल हो गया। कुछेक मुसहर मडई में संजोये हुए चंद अनाज के दानों को बेचकर अपना चंदा चुकाने की सोचने लगे। कुछ-एक किसी मालिक-मलिकार से अगहन की करारी पर कर्ज लेकर बिरादरी में बराबरी का ओहदा पाने को अकुला गये। मुसहरनिया बड की पुजाई के अवसर पर लाल चुनरी पहन कर 'अरे माई पाट चोलिया भिजेला पसेनवा तउ सब रंग केदली बने' गाने के लिए मचल उठी। अधेड़ और जवान पुजाई के दिन काली माई को चढ़ाने के लिए बजनी सूअरों की तलाश करने लगे। सूअर के उजले-भूरे नवजात छौनों की जुगाड़ बांधने लगे। शबरी माई के लिए मुर्गों की खोज में लग गये।

किंतु पपिया गुम-सुम लगाये रहा। न चंदे की राशि चुकायी, न उसमें कोई उन्माद आया। न उसने किसी से कुछ कहा, न उससे किसी ने कुछ पूछा। दिन-रात वह अपने दुखड़े-धंधे में लगा रहा। राय-मशविरा, व विचार, लेन-देन हर मामले में वह और सबसे अछूता रहा। मुहों-मुह सुनता रहा।

पुजाई के दिन भी पपिया मुसहरी के दूसरे छोर पर नीम के नीचे बैठा रहा। मन-ही-मन कुछ सोचता रहा।

तभी उसका अलगिया भाई भभोरना उसके पास जा पहुंचा और उसके पैर झकझोरते हुए बोला, 'झंझोरन भैया, क्या सोच रहे हो ?'

'कुछ भी तो नही, यू ही बैठा हू ।'

'पुजाई देखने नही चलोगे क्या ?'

'नही !'

'इस बार वे लोग कुजात छांट देंगे ।'

'तो क्या हुआ ? मैं बिरादरी मे अलग ही रहूगा ।'

'आखिर क्यों ? कुछ कारण भी तो बताओगे ? बाप-दादा सदियो से जिस काम को करते आये है। उसमे अलग होना ठीक नही। किसी तरह परंपरा को निभाना ही है। देवता-पित्तर की बात में टाग अडाना उचित नही। इस साल तुमने चदा भी तो नही दिया ।'

'कहा से देता चदा ? पेट मे फालतू होता तब तो ! कर्ज काढ़ कर चंदा देना मुझ से नही सपरता ।'

'एक दिन पेट ही काट लेते तो क्या हो जाता ? एक साल बाद तो यह दिन आता है जबकि हम सब मिलकर भोज-भात करते हैं। सालो भर तो दुखडा-धंधा लगा ही रहता है। ऐसे अवसर के लिए एक शाम भूखे रह जाते तो क्या हो जाता ?' भभोरना ने पपिया को समझाते हुए कहा ।

'चुप रहो भभोरन, एक रोज भूखे रहने की बात होती तो क्या चिंता थी ? यहा तो हर रात अंतड़ी ऐंठती है। तुम तो ऐसी बातें करते हो मानो भूख से कभी पाला ही नहीं पडा हो। बहुत बड़े रईस की तरह बात करते हो !' पपिया तुनक कर बोला ।

'नही झंझोरन भैया, मेरी बात मान लो। सगा भाई होने के नाते मुझसे बर्दाश्त नहीं होता। वे लोग तुम्हे कुजात छांट देंगे तो मुझे बहुत अखरेगा ।'

'तुम मेरी बात मानो भभोरन, मैं हरगिज नही जा सकता। पिछले साल मेरी कितनी बेइज्जती हुई, तुम नहीं जानते क्या ? झंझोरना का नाम बदल गया। सबके सब मुझे पपिया कहने हैं। तुम्ही बताओ मैंने क्या पाप किया है ?'

'पाप तो तुमने सचमुच नही किया है झंझोरन भैया, लेकिन…'

'हा-हा, तुमने भी तो 'लेकिन' लगा ही दिया ! अगर वे लोग मुझे पुजाई पर नही बैठाते तो क्योंकर यह माजरा होता ? मै तो पहले ही पुजाई पर बैठने से इनकार कर रहा था, वे लोग जिद करते रहे तो बैठ गया, अब तुम्ही बताओ, मुझ पर अगर कोई देवी सवार नही हुई तो इसमे मेरा क्या दोष ? आधे घंटे तक देवियों को गोहराता रहा, पर न तो मन टस-से-मस हुआ, न शरीर इधर-से-उधर डुला। बगल मे बैठे लोग पलक मारते ही झूम उठे। उछल-कूद मचाने लगे। घुटनो के बल बैठ कर जोर-जोर से डकराने लगे। चिक्कार मारने लगे। मुझे यह सब करना नही आता। लेश-मात्र कपन नही हुआ मेरे मन मे। और लोग मुझे पपिया कहने लगे। कहने लगे कि मैं पापी हू। इसीलिए देवी मुझ पर सवार नही हुई। मुसहरी भर मे एक तुम्ही हो जो मुझे झझोरन भैया कहते हो, वरना सबके सब मुझे पपिया कहकर पुकारते है।' पपिया ने अपना हृदय उडेल दिया और जमीन पर चुतरिया गया।

'बीती ताहि बिसारो झझोरन भैया, चलो, पुजाई मे शामिल हो जाओ। अब जिद करना ठीक नही। वहा बैठे भी रहोगे तो मुझे सतोष रहेगा। कम-से-कम देवियो से कुशल-क्षेम तो पूछ लोगे।'

'बहुत पूछ चुका हू झझोरन ! कई साल से पूछता आ रहा हूं, लेकिन कोई देवी कुछ नही बताती। और इसीलिए तो मुहल्ले वाले मुझसे जले-भुने रहते है। मन-ही-मन गिरियाते है कि दु-चार क्लास पढ क्या गया, देवी-देवता से भी वकालत करने लगा। तुम्ही बताओ, मुझे जो दुख-तकलीफ होगा, वही न पूछूगा ? और दूसरा पूछा भी क्या था ? बस, दो बाते कि मुसहरी की गरीबी कब दूर होगी ? और हम लोग अच्छे-भले आदमी की जिंदगी कब बसर करेंगे ? अब तुम्ही बताओ, क्या गलत पूछा था मैंने !'

'गलत तो कुछ नही पूछा था भैया, पर ये सब बाते देवी-देवता थोडे ही बताते है। यह सब तो नेता लोगो का काम है।'

'अरे भाग रे बुरबक ! यह सब तो नेता लोगों का काम है, और पाच सौ का सूअर-शराब खाना देवता लोगो का काम है ! है न ? माल्हत को छौना चाहिए। डाकिनी को छौना चाहिए। शायरी और काली को सूअर चाहिए। सम्मे को शराब और मुर्गा चाहिए और कुअर बाबा को···क्या-

क्या अलग ही चाहिए ! और कुछ बात पूछने के लिए हो तो वह नेता लोगों का काम है ! वाह रे वाह ! जा, जा यहा से, अब मैं समझ गया हूं। और तुम भी जान लो, यह काम न तो देवी-देवता करेंगे और न नेता करेंगे। सब कुछ अपने आप करना होगा। पिछले साल की बात जब याद आती है तो दिमाग भन्ना जाता है। काली से यही दो बाते पूछी थीं और वह मुझे डाटने लगी थी—'भाग रे पापी, करम कर, तब फल मिलेगा, करम करता नहीं और आया है दिन-दशा सुधरवाने। हाथ-पर-हाथ धर के बैठे रहने से दिन-दशा सुधर जायेगी ?' और सबके सब मुझे मार-मार करने लगे थे। देवी को क्रोधित कर देने के इलजाम मे मुझे पपिया कहने लगे थे। अब फिर वहा जाने से सियार तरकुल तर जायेगा ! तुम जाओ, अपना काम करो। मुझे पुजाई मे शामिल नहीं होना है। पुजाई मे शामिल तभी होऊंगा जब हमारी दिन-दशा बदल जायेगी। जब मैं करम करने लगूंगा।' पपिया ने लंबा भाषण दे दिया।

भभोरना गुम-सुम बैठा पपिया की बातें सुनता रहा। पपिया चुप हो गया तो वह भी चुपचाप उठकर चल दिया।

पपिया ने उसे जाते देखा तो टोक कर पूछा, 'इस साल कुल कितने सूअर चढ़ रहे हैं ?'

'पांच।'

'कितने पैसे लगे हैं ?'

'पाच सौ।'

'बाप रे बाप ! यह अनेति ! घर मे भुजा दाना नही मांगे मीबी चूहा। खाने को दाने नही मिलते। सयानी लड़कियां नगें घूमती हैं। फूस की मड़ई एक बूंद पानी नही रोकती, और पाच सौ के सूअर चढ़ते हैं। पहले मैं भी इसी फेर मे था। दो सूअर देने पड़ते थे। एक दिन के लिए इतनी बर्बादी। इतने पैसे मे तो हर साल एक मड़ई खपड़ैल होती।'

भभोरना ने पल भर खड़े होकर पपिया की बातें सुनी और चल दिया।

भभोरना जब काली चउरा के पास पहुंचा, अच्छी-खासी भीड़ लग चुकी थी। मुसहरी के लोगों के अलावा गांव के अन्य लोग भी पुजाई देखने के लिए खड़े

थे। जब वह भीड़ के अदर घुमा, सभी मुसहर-मुमहरनिया उसका मुह ताकने लगे। आखो-आखो मे उसने इशारा कर दिया कि पचिया नही आयेगा। एकाध मुसहर 'पुजाई के बाद पंचित होगी' बुदबुदाये और पुजाई मे लीन हो गये। मुसहरनिया 'अरे माई पाटऽ चोलिया भिजेला पसेनवा त सब रग केदली बने' गाते हुए झूम उठी। उजारना, बसबना, रामचनरा आदि करताल ढोलक और पखावज बजाने लगे। वातावरण झूम उठा।

अब काली चउरा के आगे पाच मुसहर पालथी लगाये बैठे थे। छठा स्थान खाली था, जहा भभोरना जाकर बैठ गया। छह देवियो के लिए छह सवारिया तैयार हुई। सबके सब काली माई की गोहार करने लगे।

पखावज की ताल तेज हो गयी। करताल झनझना उठी। मुसहरनिया झकझोर-झकझोर कर मल्हार गाने लगी। सवारी बने मुसहरो की गर्दनें हिलने लगी।

भीड वृत्ताकार हो गयी। सबकी आखे केंद्र मे गड गयी।

सबसे पहले घरीछना मुसहर ने झूमना शुरू किया। उस पर ककार माई आयी और तुरंत ही ककार माई अपनी मवारी वने घरीछना मुसहर की आवाज मे डकराने लगी। जोरो का शोर मच गया। सभी मुसहरो ने सिर झुकाया। ककार माई ने डकराते हुए उन पर अक्षत छिड़का और चिल्लाने लगी, 'घोडा दे रे, घोडा दे।'

चट दो मुसहर उठे। एक सूअर की टाग लाये। सूअर की चारों टागें पहले ही से बधी थी। उसे ककार माई के आगे पटक दिया गया। एक मुसहर ने हाथ मे नोकदार और मुरचायी छड उठायी और ठीक मे उसके कलेजे का अदाज लगाकर घोप दी। नोकदार छड सूअर के ठीक कलेजे मे धसी थी। मुसहर खुशी से नाच उठा। सूअर के शरीर से खून बह चला। [illegible] ने उसे एक बर्तन में रोका और ककार माई की ओ[illegible] बढ़ा दिया। ककार माई अपनी सवारी के हाथो बर्तन पकडकर सवारी के मुह से [illegible] का खून पी गयी। मुसहर जै-जैकार कर उठे। सबके चेहरो पर प्र[illegible] फैल गयी। सबने अपने दुखडे सुनाये। ककार माई से अक्षत प्रस द पाये औ चरणो में गिर गये।

ककार माई अपनी सवारी पर से उतर गयी। [illegible] ने .

आप को सभाला । गाजे की टान लगायी और हसता हुआ बैठ गया ।

अब माल्हत माई को बारी थी । कुबरा मुसहर सवारी बना बैठा था।

माल्हत माई जी डकराते हुए आयी। झूम-झूमकर चिल्लायीं। मुसहरों ने आबाल-वृद्ध सिर नवाया और माई के चरण पकड़े । माई ने अक्षत छीटा और भोजन के लिए चिल्लायी।

उसके लिए दूसरा छौना तैयार था। पछारन मुसहर ने उनकी मुलायम चमड़ी में छड़ घोंपी । मुलायम कलेजे को छड़ की नोक ने भेद दिया तो लहू बह चला । माल्हत माई छौने का खून पीकर तुष्ट हुई । जय-जयकार मची। मुसहरी सदा वैभव से भरी रहे, यह आशीर्वाद मिला । मुसहर धन्य-धन्य हो गये । कुबरा मुसहर ने देह झाड़ी और चिलम का धुआं नाक से निकाल कर मुस्कराने लगा।

अब डाकिनी और बिघिन की बारी थी। रमुआ और बलकरना इनकी सवारी करने के लिए तैयार बैठे थे। शराब की बोतल सामने रखी हुई थी। मुर्गे को दोनों टागें बाध कर लिटाया हुआ था। सबके सब डाकिनी और बिघिन को गोहरायें जा रहे थे। मुसहरनियां मल्हार गा रही थीं। 'नीमिया की डारि मइया लावे ली हिलोरवा की झुमि-झुमि' के साथ कर-ताल, ढोलक और पखावज कधे से कधा मिलाये हुए थे। वातावरण में गहमा-गहमी फैली हुई थी। डाकिन और बिघिन जब अपनी सवारी पर सवार हुईं, रमुआ और बलकरना डकरा उठे। आंखें तरेर कर, भयावनी सूरत बनाकर, वे मानवेतर प्राणी-से दीखने लगे।

मुसहर-मुसहरनियों ने तुरत उन्हें सिर नवाया। प्रसादस्वरूप अक्षत पायें। टी० बी० के रोगी बुचना को दीर्घायु होने का आशीर्वाद मिला। मुसहरी में धन-वैभव लहराने का वरदान मिला। नन्हें बच्चों की फूंक-फांक हुई। देवियों ने रमुआ और बलकरना के मुह में शराब का घूट और मुर्गे का गरम-गरम लहू पिया और मुसहरों की जय-जयकार करके अन्तर्धान हो गयी।

अब तक चार देवियां अपनी खुराक लेकर और वरदान देकर जा चुकी थीं। किन्तु कुंवर बाबा और सम्मे माई का आगमन बाकी था। कुंवर बाबा की सवारी के लिए अधेड़ वय का टीमू मुसहर तैयार बैठा था और सम्मे माई

के लिए नयी उम्र का भभोरना। टीमू पर तो कुवर बाबा का प्रभाव शुरू हो गया था। मगर भभोरना ज्यों का त्यों बुत बना बैठा था। उसे इस तरह निर्लिप्त भाव से बैठे देख मुसहरों मे कानाफूसी शुरू हो गयी।

कुवर बाबा आये और खुराक लेकर चले गये।

टीमू देह झाड कर बैठ गया।

मुसहरो की फुसफुसाहट अब तक चुपचाप बैठे भभोरना को देख कानो-कान फैल गयी थी। पाच देव आये और चले गये। सम्मे क्यो नही आ रही है ?

लोगों ने गौर किया कि उन पाचो की सवारी बनने वाले ढलती उम्र के थे, जबकि भभोरना बीस-पच्चीस के बीच का है। लेकिन भभोरना क्या करे ? उसके शरीर मे तनिक सिहरन नहीं आयी। रत्ती भर आवेग नही उठा। अन्य मुसहरो की तरह वह कान मे उगली डालकर चिल्लाया, गोहराया, किंतु सब कुछ बेकार। सम्मे माई उस पर नही आयी तो नहीं ही आयी। भभोरना चुपचाप बैठा रहा। न सिर पटका, न उसने उछल-कूद मचायी, न उसके मुह से डकराने की आवाज निकली।

भभोरना अनायास ही डर गया। लोग उसे भी पापी कहेंगे, यह सोच कर वह सिहर गया।

'यह भी पापी है,' भभोरना पर सम्मे माई का असर न होते देख मुसहरो ने निर्णय लिया और डाटकर तिरस्कार-पूर्वक उसे उसके स्थान से उठा दिया।

बगल में बैठे टीमू मुसहर ने सम्मे माई को अपने ऊपर बुलाने की ठान ली और पालथी लगाकर बैठ गया।

सम्मे माई तुरत हाथ झटकारती, सिर झुमाती आ गयी। सभी मुसहर खिल उठे। सबने अपनी-अपनी अरजी लगायी—माई जी, बड़े दुख मे हू··· माई जी, बेटा तीन साल से बीमार है,···माई जी, गोरचिमना खून हगता है···माई जी, टिलुआ वो लकवे की शिकार है···

और सम्मे माई 'सब ठीक होगे रे' कहती गयी। बीच-बीच मे 'खाना दे रे' भी कहती गयी।

भभोरना से भी रहा नही गया। पूछ बैठा, 'माई जी,

कब दूर होगी ? भरपेट भोजन कब मिलेगा ? मड़ई-खपड़ैल कब होगी ? माई जी, हम आदमी कब बनेंगे ?'

'सब होगा रे ।' सम्मे माई ने बाक् दिया ।

'कब होगा, माई जी ?' भभोरना ने फिर पूछा ।

'सबर कर रे !' सम्मे माई ने पुन बाक् दिया ।

'अब तक बहुत दिन बीत गये, माई जी !' भभोरना का स्वर बर्फ से भी ठंडा था ।

'भाग रे पापी । खाने को दे ! करम करता नहीं, बकवास करता है । हाथ पर हाथ रख कर बैठने से सब हो जायेगा !' सम्मे माई बिगड़ गयी । सभी मुसहर झनक उठे । भभोरना भी पापी है । उस पर बरस पड़े—'चुप रह रे पपिया, माई जी से बकवास मत कर !'

सबने मिल कर सम्मे माई से क्षमा मांगी । उन्हें मनाया । कबूतर की गर्दन मरोड़ी और शराब पीने को दी ।

सम्मे माई खुश हुई । मुसहरी की जय-जयकार की और अन्तर्धान हो गयी ।

टीमू मुसहर ने देह झाड़ी । गांजे की तान लगायी । आंखों और नाक से धुआं उगल कर मुस्करा उठा ।

करताल और ढोलक की तान पर अब भी जवानी चढ़ी हुई थी । लोग बाग ज्यों-के-त्यों खड़े-बैठे पुजाई देख रहे थे । मुसहरनिया 'अरे मोर सगरी चुदरिया लहरदार वा अचरवा काहे धूमिल हो' गाये जा रही थी ।

किन्तु भभोरना का मन उद्विग्न था । अनमना-सा वह उठा और झझोरन के पास जो सूअरबाड़ की बगल में जमीन पर गमछा बिछाकर नीम की छाया में लेटा था, जाकर बैठ गया ।

१

दूसरा कदम

अचानक वातावरण चिराइन गंध से भर गया। बिरदा घबराया-सा उठा। इधर-उधर झांका। घरवालों से पूछा, कहां क्या जल रहा है, लेकिन कहीं से कुछ जलने की खबर नहीं मिली। एकाएक उसकी निगाहें ऊपर उठीं। उसने देखा, आकाश में करीब सौ मीटर की ऊंचाई तक बहुत गहरा धुआं उठा हुआ है, जिसे पछुआ हवा बहाये लिये जा रही है। धुएं की रफ्तार हवा से कम थी। जैसे वह ठिठक-ठहर कर अपनी उपस्थिति और उद्गम की सूचना आस-पास वालों को दे जाना चाहती हो और पछुआ बलात् उसे घसीटे लिये जा रही हो। कहीं से एक आवाज आ रही थी—हन्न ऽऽऽ हन्न ऽऽऽ हन्न ऽऽऽ

बिरदा पुस्तक रखकर दरवाजे की ओर लपका बाहर आकर देखा, लोगों का धूम-धड़क्का मचा हुआ है। सरपट सबके सब बैठका बरगद की ओर भागे जा रहे हैं, जिसका नाम श्रीवास्तवजी ने आजाद चौक रख दिया है। बिरदा भी उन लोगों के साथ हो लिया और आजाद चौक की ओर दौड़ पड़ा।

वह अभी दो-चार कदम ही आगे बढ़ा था कि उसके कानों से एक अत्यंत तीखी आवाज टकरायी, 'बाप रे बाप, नान्ह जात के अतना मजाल, अइसन हिम्मत, बराबरी बोले के। वाह ! मारि के खराब काहें नइख स कर देत। मारि के चीकस निकाल द स सारन के। वाह ! जोलहों के तो मरखाह हो गइल !'

यह सुनकर विरदा पसोपेश में पड गया। आखिर बात क्या है? उत्सुक होकर वह और आतुरता से उस भीड के साथ दौडने लगा जो मुसहरों के घरों की ओर भागी जा रही थी। आजाद चौक से पश्चिम की ओर।

जहूरमिया और रमजान मास्टर के घर के पास पहुंच कर उसने देखा, बाबू चेतनसिंह मुसहर टोली की तरफ से बांहे चढाते आ रहे हैं। उनका चेहरा तमतमाया हुआ था। पांवों में बिजली की-सी गति। हाथ में डेढ़ पोरसे की लाठी तेल मलकर लाल की हुई। माथे पर पसीने की बूंदें। वे लगातार बोलते, लंबी सांस लेते, गालियां बकते उसके पास से गुजर गये—'साले कम्युनिस्ट बनते हैं। पानी पिला-पिलाकर मारूंगा। क्या समझते हो? इतनी जल्दी सिर पर चढ जाओगे और हम लोग देखते रहेंगे?'

बाबू चेतनसिंह के ये शब्द सुनकर विरदा घोर आशंका में ग्रस्त हो गया। दरअसल उसने न तो गांव में पहले 'कम्युनिस्ट' शब्द सुना था और न किसी कम्युनिस्ट को देखा ही था। उत्सुकता और बढी। पैरों में बिजली-सी गति आ गयी और अगले ही क्षण वह घटना-स्थल पर था।

वहां पहुंचते ही विरदा ने देखा, ठसाठस लोगों की भीड लगी हुई है और मरजुआ मुसहर की मडई आग की लपटों का शिकार बनी हुई है। चट्-चट् की ध्वनि करती आग की लपटें दायें-बायें पसर रही हैं, जिससे घुमड-घुमड कर धुआं ऊपर की ओर उठ रहा है। लपलपाती आग की लपटें मुंह-बाये पूरी मुसहर टोली की झोपडियों को निगल जाना चाहती हैं। चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है, जिसमें अधिकांश आवाजें मुसहरनियों की हैं जो लगातार विलाप कर रही हैं। एक तरफ खूंटे में बंधी बछिया, जिस पर किसी का ध्यान नहीं गया है, खूंटे से खुलने के लिए चक्कर काट-काट कर जोर लगा रही है। पास ही कई सूअर-सूअरियां अपने परिवार सहित बहुत बुरी तरह कुकुआ रही हैं। उनका कुकुआना अजीब भयावना लग रहा है। वे ओसार से ही आगे तरेरती आग की लपटों को आतंकित होकर देख रही हैं। विरदा ने देखा, मडइयों के चारों तरफ लोगों का हुजूम लगा हुआ है। सबके सब बेचैन आपस में रेलमपेल कर रहे हैं। व्याकुलता और घबराहट अपने चरम शीर्ष पर है। सभी हो-हल्ला करते चिल्ला रहे हैं—इधर आओ, उधर देखो, वहां लहक रहा है'''पहले यहां पानी डालो'''दूसरी मडई की

ओर आग बढ़ रही है'''देखना, सभल के, आग से बचना वरना झुलस जाओगे'''।

कई लोग बेताबी से चिल्ला रहे थे और कई लोग पास के कच्चे कुओं से पानी लाने में व्यस्त थे। गगरा-बाल्टी-घडा-कराही। जिसे जो बर्तन मिला था, उसी मे पानी भरकर दनादन दौड रहा था। कुछ लोग अगल-बगल की झोपडियो पर चढकर लाठियो से पीट-पीट कर आग बुझाने मे व्यस्त थे। लेकिन आग बुझने का नाम नही ले रही थी। पछुआ के झोके उसे लगातार प्रोत्साहित कर रहे थे और वह विकराल रूप धारण किये जा रही थी।

अगले ही क्षण विरदा मुमहर टोली मे घुस गया। लपककर एक लडके से एक बाल्टी ली और कुए की ओर दौड पडा। कुए पर कई लोग बाल्टियो मे पानी खीच रहे थे और पानी ढोने वालो के बर्तनो को भर रहे थे। विरदा ने भी अपनी बाल्टी उन लोगो की ओर बढायी। भरी बाल्टी लेकर वह तेजी से मुडा और धधकती झोपड़ी की तरफ ले आया। झोपडी पर चढे लोगों ने उससे बाल्टी ली और आग पर उडेल दी।

लगातार चालीस मिनट तक यह क्रम चलता रहा और वह अन्य लोगो के साथ आग बुझाने मे मशगूल रहा। जब आग की ज्वाला कुछ शान्त हुई, विरदा का मन कुछ आश्वस्त हुआ। उसने हाफते हुए बाल्टी को एक तरफ रख दिया और झोपडियो से निकलते धुए को पार कर दक्षिण की तरफ बढा जहा सब मुसहरनिया दहाड मार कर रो रही थी। वे छाती पीटकर और कलप-कलप कर बिलख रही थी। सिर्फ एक मुसहरनी सरजुआ बो फुफुनी उठाये मर्दो के साथ आग बुझाने मे व्यस्त थी। बाकी सभी मुसहरनिया—मलुआ बो, देवना बो, देवसरना बो आदि पूरे परिवार सहित चिल्ला-चिल्ला कर रो रही थी—दइवा गे दइवा। हमनी का तोर का बिगडनी गे दइवा। ई नतियन के का बिगडनी गे दइवा'''

उनके आर्त्त रुदन को सुनकर विरदा का हृदय विकल हो उठा। उसे अदर से उमस महसूस होने लगी। वह एक पल भी वहा नही रुक पाया। तुरत ही काली माई के चउरा की ओर नीम के पेड़ के नीचे चला आया।

अब वह दहशत में था। एक साथ कई तरह के प्रश्न उसके दिमाग में उठ रहे थे आखिर यह सब हुआ क्यो ? आग लगी कैसे ? किसने लगायी ? वह परेशान हो गया और परेशानी दूर करने के लिए यत्र-तत्र खड़े लोगो की बातें सुनने लगा, जो आगजनी पर ही टीका-टिप्पणी कर रहे थे।

वह बारी-बारी से ऐसे कई दलो के नजदीक गया। उनकी बातें सुनी, लेकिन कुछ निष्कर्ष नही निकाल पाया। अत वहा से हटकर आगे बढा। सुदामा से पूछा। इमामू से पूछा। नरेश से पूछा। आग लगी कैसे ? किन्तु किसी ने उसे स्पष्ट कारण नही बताया। सबके सब फुसफुसा कर रह गये। कोई भी उसे सतुष्ट नही कर सका। वह फिर काली माई के चउरा के पास लौट आया। वहा दस-पद्रह लोगो की मजलिस लगी हुई थी। पास पहुचते ही उसे पुन वे ही शब्द सुनायी पडे जो बाबू चेतनसिंह से वह सुन चुका था—'साले कम्युनिस्ट बनते है। यह नही समझते कि यहा इनकी एक नही चलने देंगे। समझते हैं, यह भी शिवपुर है।'

उन्ही मे से कोई सारे मुसहरो को गालिया देते हुए कह रहा था, 'साले मादर' नीच। हरामखोर'। अब ये सिर पर चढने लगे हैं। हमी लोगो की बदौलत इनकी रोटी चलती है और ये हमसे ही जबान लडाने लगे है। इन लोगो का सफाया किये बगैर ये मानेंगे नही। इन सालो के बाप-दादे जितना भी बोल दो, मार दो, गालिया दे दो, लेकिन एक हरफ भी नही बोलते थे। इन सालो पर तो नया रग चढा हुआ है।'

बिरदा को यहा भी अपने प्रश्न का जवाब नही मिला। उसकी जिज्ञासा शात नही हुई, बल्कि और प्रबल हो गयी। वह घृणा से भर आया। वहां से चल दिया और जाकर सरजुआ की मुसहरनी के पास खड़ा हो गया, जो आग बुझा लेने के बाद बिल्कुल उदास खडी थी। उसकी आखें सुर्ख हो गयी थीं और चेहरा सूज गया था। बिरदा ने उससे पूछा, 'सरजुआ की, सरजुआ कहा गया ?'

सरजुआ की चुप रही। खांसी हुई थूथुनी नीचे खिसका दी। बिरदा ने जवाब न पाकर पुन पूछा, 'सरजुआ कहा गया है री ?'

'बरहपुर गये हैं लोग।' वह बोली।

'का ? क्या करने बरहपुर ?'

'अभी गये है, थाने पर।'

'और कौन-कौन गये है ?'

'मलुआ, देवना, देवसरना, बटोहिया सबके सब···जिन-जिनको चोट लगी है, जिन-जिनके सिर फूटे हैं, वे सब गये हैं।'

'उनको चोट कैसे लगी ? सिर कैसे फूटे ?'

'बाबू चेतनसिंह के लडके ने सबको लाठी से मारा-पीटा है।'

'आखिर क्यो ?' बिरदा प्रश्न पर प्रश्न करता जा रहा था और वह बताती जा रही थी।

'सुनिए न बाबूजी, आज सुबहे की तो बात है। हमारी एक सुअरिया छवरिया के नीचे उतर गई। छवरिया के नीचे बाबू चेतनसिंह का खेसारी का खेत है। खेत में देखते ही उनके लडके ने सुअरिया पर लाठी चला दी। सुअरिया गाभिन थी। बच्चा देने वाली थी। वह भाग नही सकी और वे लगातार उसे पीटते रहे। कई लाठियो की चोट खाकर बेचारी वही पसर गई और थोडी देर बाद मर गई।'

'इसके बाद ?' वह अभी बोल ही रही थी कि बिरदा बीच ही मे बोल पडा।

'सुनिए न बाबूजी, मैं बता ही तो रही हू। सुअरिया मर गई तो वे हम लोगो के पास आये और लगे पुश्त-दर-पुश्त की इज्जत उघारने। लगातार गाली बकने। उनकी गालिया सुन सभी मुसहर जुट गये और उनसे पूछने लगे, 'मालिक, काहे गाली दे रहे है ? बात क्या है ? क्या गलती हुई है हम लोगो से ?' तब बाबूजी, वे और गरम हो गये, 'साले, तुम लोग अब बिगड गये हो। जान-बूझ कर हम लोगों की फसल बरबाद करते हो।' कहते हुए वे मुसहरों पर लाठिया चलाने लगे। हम उन्हे लाख रोकते रहे, उनसे मिन्नतें करते रहे—'मलिक, आप काहे नाराज हो रहे है ? हमारी सुअरिया को तो मार ही डाला, अब हम लोगो पर लाठी क्यो चला रहे है ? हम लोगो पर दंड-जुरमाना लगा देते, उसे मार डालने की क्या जरूरत थी ? आप मालिक है। हम आपकी परजा है।' लेकिन उन्होंने हमारी एक नही सुनी। मैं बोलने लगी तो मुझ पर भी लाठी चला दी। देखिए न, लाठी के हूरा से चमड़ी उखड गई है। बडी जोर विसविसा रहो है। उन्होने

उलझा रहा। एम० ए० की परीक्षा सिर पर सवार थी, किन्तु कोई चिन्ता नही। घटना के बारे मे आगे जानने की धुन मे बवंडर की तरह इधर-उधर भटकता रहा।

अगली बार विरदा ज्योंही रामनाथ तिवारी के दालान से आगे बढ़कर कोडार मे पहुचा, उसने मुसहर टोली की ओर देखा। कुछ लोगों की भीड़ वहां पुन इकट्ठी थी। वह बेतहाशा मुसहर टोली की ओर दौड़ा और एक पल में ही ठेहुन भर धमोई के काटों को हेलता, टूटी चप्पल घसीटता, भीड़ में जाकर शामिल हो गया।

वहा उसने देखा, एक पिस्तौलधारी व्यक्ति खटिया पर बैठा हुआ है। उसे चारो तरफ से मुसहरनिया घेरे हुए हैं। पास ही नीम गाछ के नीचे चार-पाच सूअर और उनके छौने थुथुने मार रहे हैं। तीन-चार गडखुल्ले बच्चे काले-कलूटे नग-धड़ग, धूल-माटी मे खेल रहे है। बेचना मुसहर की मडई से सटी खाट पर पिस्तौलधारी व्यक्ति के साथ एक अन्य व्यक्ति भी बैठा हुआ है।

उन्हे देखकर विरदा एक बार और स्तब्ध हुआ और सोचने लगा—ये पुलिस वाले हैं क्या ?···लेकिन पुलिस वाले तो सिविल ड्रेस मे नही होते··· ये सिविल ड्रेस मे क्यो है ?···हो सकता है, ये पुलिस वाले न हो। उनकी तो लाल टोपी दूर से ही अपनी पहचान करा देती हैं। क्षण भर को उसने यह सोचा, लेकिन तुरत ही पिस्तौलधारी व्यक्ति के प्रश्नों मे उलझ गया। वह लगातार मुसहरनियो से पूछता जा रहा था—किसने आग लगायी ? क्यो लगायी ? कब लगायी ? पास ही बैठा बूढ़ा सुखमन उत्तर देता जा रहा था, जिन्हे वह पिस्तौलधारी व्यक्ति अपनी डायरी मे लिखता जा रहा था। नीम गाछ पर बैठा एक कौआ बीच-बीच से काव-काव करने लगता, मानो कह रहा हो —'मूर्ख क्या फरियाद कर रहे हो, इससे कुछ होने-जाने को नही।' बूढ़ा सुखमन पिस्तौलधारी व्यक्ति के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कभी भटभटा जाता तो ऊपर बैठे कौवे को आंखें तरेर कर देखने लगता।

'कितनी झोपडिया जली हैं ?'

'पाच, सरकार।'

'और सामान क्या-क्या जला है ?'

'सरकार, बारह मन धान देवसरना की मडई मे था। सात मन बटोहिया का और सरना का नौ मन धान जला है। बाकी दो मड़इयो मे तीन-तीन चार-चार मन धान था।'

'और कुछ?'

'तीन गो मूअर के बच्चे थे सरकार। दुगो मुर्गी सरजुआ की, अण्डा मे रही थी, वह भी जल गयी। गेहू-ऐहू तो तीन-चार मन जला होगा। अलावे हडिया-पतुकी मे पाभर-आधसेर अनाज थे, सब राख हो गये।'

'कपडा-लत्ता भी था?'

'हा सरकार, लेकिन किसका-किसका गिनाऊ? सब लोग तो थाने पर गये है। उन सबका तो सब कुछ जल ही गया। बचा ही क्या है, जिसकी गिनती गिनाऊ फिर भी जहा तक जानता हू, सरजुआ की दो धोतिया, दो कमीजे और कुछ पैसे थे। सरकार और लोगो का तो मुझे सही-सही याद नही, क्या-क्या था।' सुखमन जानते हुए भी सारी बाते नही कह सका।

इतनी तहकीकात के बाद पिस्तौलधारी व्यक्ति ने सरजुआ की ससुराल का पता पूछा। उसके ससुर का नाम पूछा। बटोहिया के रिश्तेदारो का पता पूछा। पुन कई प्रश्न सुखमन से किए और डायरी मे नोट किये। इसके बाद वह खटिया पर से उठा और जलती हुई झोपडियो की ओर गया जिनमे अब भी धुआ निकल रहा था और अनाज जलने की तीखी चिराइन-गंध चारो तरफ फैली हुई थी। मिट्टी के कोठिलो मे जलते अनाजो की गध ज्योही विरदा के नथुनो मे घुसी, वह एकाएक आक्रोश से भर गया। जली हुई इन खंडहर मडइयो के अलावा उसके मस्तिष्क मे कई अन्य दृश्य उभर आये।

विरदा ने अक्सर देखा है, अगहन-पूस मे जब कपकपाती ठंडक हड्डियो मे घुसने लगती है और शीतलहरी के भयानक प्रकोप से वचने के लिए गाव के सारे लोग घरो मे रजाई तले दुबके रहते है, तब भी सरजुआ वो सुबह ही उठती है। आचल को कानो मे लपेट लेती है, ताकि सनसनी शीतलहरी कान मे न घुस सके। फिर झाडू-सूप उठाकर शीतभरे धनकटे खेतो मे नगे पाव पहुच जाती है और पौधो से झडे धान को बुहारने लगती है। शीत-कुहासे की परवाह किये बगैर वह कापती, दांत किटकिटाती मारे

दिन धान बुहारती है। दिन भर झुके-झुके कमर कमान बनने को हो जाती है। तब कहीं दो-चार सेर धान लेकर वह अपने घर आती है। उसके साथ बहुधा सरजुआ और उसका बेटा भी होता है। वे कुदाल या खनिता लिये धनकटे खेतों में चूहों का बिल ढूंढते रहते हैं। उन्हें ज्योंही कोई बिल दिखाई पड़ता है, उसे कोडना शुरू कर देते हैं। सारे खेत में फैले बिल को कोड डालते, तब कहीं चालाक चूहे के कोठे का पता लगा पाते हैं और उसके द्वारा सग्रहित 'धान माटी' उन्हें मिल पाता है।

इसी तरह वे जेठ की चिलचिलाती दुपहरिया में रबी के कटे खेतो मे झड़े हुए गेहूं और चने का एक-एक दाना चुनते हुए, धूप-लू की परवाह किये बगैर, लगातार परिश्रमरत रहते हैं। कभी-कभी बिरदा सरजुआ को कटनी करते, किसी का हल जोतते या लकड़ी फाड़ते भी देखता है।

उनके कठिन परिश्रम की कल्पना कर बिरदा एकबारगी कांप उठा। फिर जले हुए सूअरों की भयावनी आकृति और गंध से उत्पन्न एक परेशानी उसे मथ गयी। वह उबलने-उबलने को हो आया, किन्तु तुरन्त ही वहां से हटकर आगे बढ़ गया—बहुत बेचैनी के साथ, मानो आग उसी के शरीर में लगी हो और झोंपड़ियों से निकलता हुआ धुआं उसी के शरीर को तपा रहा हो।

पिस्तौलधारी व्यक्ति अब भी झोंपड़ियों का मुआयना कर रहा था और बीच-बीच में कुछ-न-कुछ पूछ रहा था, किन्तु उसके सवालों को नजर-अंदाज करते हुए बिरदा अगले ही पल रामयश गढ़वाल के चबूतरे पर चला आया, जहां कई लोग पहले से ही खड़े थे और पिस्तौलधारी व्यक्ति की ओर सशंकित आंखों से देख रहे थे। यहां बिरदा को मालूम हुआ कि वह पिस्तौलधारी व्यक्ति सी० आई० डी० पुलिस है। उसे अब समझते देर नहीं लगी कि सी० आई० डी० वाले ने मुसहरों के रिश्तेदारों का पता क्यों लिखा था? शायद वहां जाकर मालूम करेगा कि इनके रिश्तेदारों में तो कोई कम्युनिस्ट नहीं, जिससे ये प्रभावित हों!

कुछ देर बाद सी० आई० डी० पुलिस इन्क्वायरी करके लौटा और अपनी साइकिल डगराता उस खेत तक पैदल गया, जिसमें सरजुआ की सूअरिया उतर आयी थी। उसके पीछे-पीछे सुखमन और तीन-चार

मुसहरनिया भी उस खेत तक गयी। सुखमन ने उसे बताया, 'देखिए सरकार, यही मालिक का खेत है जिसमें सुअरिया उतर आई थी।'

'अरे सच!' सी० आई० डी० वाले ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा, 'इसमें तो एक पाजा खेसारी भी नहीं होगा। सचमुच यह अत्याचार है।'

पुनः उसने अपनी डायरी खोली और कुछ दर्ज किया। इसके बाद वह साइकिल पर चढ़ कर चल दिया। सुखमन और अन्य मुसहरनिया कुछ देर उसे घूरती रही। उसकी साइकिल पोखरे के उस पार करबोला से भी आगे बढ गई तो वे अपनी झोंपड़ियो की ओर लौट आये।

बिरदा रामयश गढ़वाल के चबूतरे पर से ये सारी हरकतें देख रहा था। सी० आई० डी० वाले के चले जाने के बाद वह भी अपने घर की ओर लौटा। लेकिन तभी पीडी पर सरजुआ आते हुए दिखाई पडा। उसके साथ अन्य मुसहर भी मुरझाये हुए चले आ रहे थे। बिरदा ठिठक गया। कुछ पल उन्हें देखता रहा। तभी लाल-सी कोई चीज उसे दीख पडी, जो उन्ही लोगो के साथ आगे बढ रही थी। कुछ कोशिश के बाद, जब वे रामदेवी की तरी में पहुंच गये, बिरदा ने उसे पहचाना। वह बिहार पुलिस का एक सिपाही था, जो सिर पर लाल टोपी पहने हुए था और लगडाता हुआ पैर घसीटता आ रहा था।

उसे देखते ही बिरदा सकते मे आ गया। थोडी देर के लिए उसका माथा ठनका। वह सोचने लगा—यह कैसा गोरखधंधा है? सी०आई०डी० वाले के बाद बिहार पुलिस? वह भी अकेला एक सिपाही! यह क्या इन्क्वायरी करेगा? क्या रिपोर्ट लिखेगा? काफी सोचने के बाद उसे इस गोरखधंधे का सूत्र मिला, जिसका क्रम उसने तुरन्त ही जोड लिया।

आग ज्योंही लगायी गई थी, बाबू चेतनसिंह का बडा बेटा, जो नौकरी से छुट्टी पर आया हुआ था, अपनी बुलेट पर सवार हुआ और फटाफट बरहपुर जा पहुचा। सी० आई० डी० पुलिस को इत्तिला दी—'मेरे गाव में कम्युनिस्टो का आतक फैल गया है। सारा गाव उनके आतक से परेशान है। उन्होंने अपनी झोपडियो मे खुद आग लगा ली है। कुछ मारपीट भी हुई। तत्काल कार्रवाई नही करने पर सभव है, खून-खराबी और बढे।'

और थाने के दरोगाजी को अपनी रपट लिखायी—'हमारे गाव मे मालिक-परजा के बीच तकरार बढ़ गई है। खून-खराबी का अन्देशा है। बनिहार मुसहर कम्युनिस्ट बन गये है। इसकी जाच-पडताल करके निबटारा कर दीजिए। जो सेवा होगी कर दूगा।'

तब तक गाव के घायल मुसहर बीच रास्ते मे ही पहुच पाये थे।

इसके बाद वह बुलेट फटफटाता पुन अपने गाव चला आया। गाव के सभी बड़े लोगो से मिला और उन्हे सावधान करते हुए कहता फिरा—'कोई भी इस घटना के पक्ष मे बयान नही देगा। यह सिर्फ हमारी बात नहीं। आप लोग भी बड़े आदमी है। इन कमीनों पर नजर नहीं रखेंगे तो ये सिर पर चढ जायेंगे और काबू से बाहर हो जाने पर आपकी इज्जत खाक मे मिल जायेगी। आप दो कौडी के भी नही रह जायेंगे। इनसे सतर्क नही रहने पर इन्हे बढते देर नही लगेगी। आप देख ही रहे है, सरकार भी इनके लिए क्या-क्या नही कर रही है!'

इन सारी घटनाओ का क्रम जोडने के बाद बिरदा पूर्णत आश्वस्त हो गया कि कही कुछ गडबड-घोटाला जरूर होगा। वह तेजी से उस ओर बढ गया, जिधर से सरजुआ और अन्य मुसहरो के साथ लाल टोपी वाला सिपाही आ रहा था। नजदीक पहुचते ही उसने सरजुआ से पूछा, 'कहो, क्या हुआ सरजू?'

'दरोगाजी ने पाच बड़े लोगो को बुलाया है।' सरजुआ मुरझाया-सा बोला, 'यह सिपाही उन्ही लोगों को लिवा जाने के लिए आया है। उन्हीं लोगो से पूछताछ के बाद दरोगाजी आगे कुछ करेंगे।' इन शब्दो के साथ सरजुआ का स्वर और बुझ गया। उसके चेहरे पर व्याप्त उदासीनता गहरी चिंता मे बदल गई, जिसे देखकर बिरदा सिहर उठा।

दूसरी सुबह बिरदा ज्योही घर से निकला, उसे पता चला कि सरजुआ और बाबू चेतनसिंह का झगडा निबट गया है। दरोगाजी और गाव के पाच माननीय लोगों ने मिलकर इस झगड़े को सुलझा दिया। बिरदा यह सुनकर दंग रह गया और तत्काल ही मुसहर टोली की ओर चल पड़ा। सरजुआ से मिला। सरजुआ ने पहले तो कुछ भी बताने मे इन्कार कर दिया, लेकिन बिरदा की सहानुभूति समझ कर सब कुछ बता दिया।

उस रोज वे ज्योंही थाने पर पहुचे थे, वहा गाव के अन्य बडे लोग पहले ही से पहुचे हुए थे। कुछ क्षण बाद दरोगाजी उन्हे समझाने लगे—'सरजुआ, तुम लोगों ने हमारे थाने को बदनाम कर दिया। इसके पहले इस इलाके में कम्युनिस्टो का नामोनिशान नही था। किन्तु तुम लोगो की घटना से सारा इलाका बदनाम हो गया। तुम लोगो की देखा-देखी ऐसी घटनाए और बढ़ेंगी। नतीजा तुम लोगों के साथ जो होगा सो होगा, पर मेरी सोचो। परेशानी मे तो पड़ ही जाऊगा, मेरी तरक्की भी रुक जायेगी। इसलिए तुम लोग एक काम करो। केस-फेस के चक्कर मे मत पडो। मै बाबू लोगो से दवा-दारू के पैसे दिला देता हूं। जितने लोग घायल हुए है, सब की दवा करा लो और ठीक से रहो। बेकार परेशान मत होओ और न मुझे ही परेशान करो। दो बात बर्दाश्त कर ही लोगो तो क्या हो जायेगा ?'

दरोगाजी आधे घण्टे तक घायल मुसहरो को उपदेश देते रहे। जब भी वे कुछ कहना चाहते, दरोगाजी अपना बेत सभाल लेते और कडकती आवाज मे डाटते—'विशेष बकवास करोगे तो मै अभी सबको अरेस्ट कर लूगा। फसाद बढाने का मजा सबको मालूम हो जायेगा।'

किन्तु सरजुआ फिर भी नही माना। उसने कह ही दिया, 'सरकार, यह एक दिन की बात नही। हम लोग कल से भूखो मर जायेंगे, खाने को कुछ नही बचा। रहने को मडई भी नही। मै आपके पैर पड़ता हू। दुहाई सरकार की। हमे इंसाफ दीजिए।'

यह सुनकर दरोगाजी आग-बबूला हो गये और अपना बेंत सरजुआ पर चलाने लगे। बेंत लगते ही सरजुआ रुआसा हो आया। उसकी जुबान बद हो गयी। वह लाल आखों से पास बैठे अन्य मुसहरो को देखने लगा, जो मुंह बद किये चुपचाप बैठे हुए थे।

इसके बाद दरोगाजी ने बाबू लोगों को हिदायत देते हुए कहा, 'देखिए साब, इस बार जो हो गया, सो हो गया। अगली बार से मैं इस तरह की कोई बात नही सुनना चाहूगा। जाइए, इन लोगों की दवा-दारू का इतजाम कर दीजिए।'

गाव के बाबू लोग चेहरो पर व्यंग्यात्मक प्रसन्नता लिये अपने घर लौट आये और दवा-दारू के नाम पर उन्होंने कुछ पैसे मुसहरो को दे दिये।

सरजुआ ने अनिच्छापूर्वक पैसे ले तो लिये, लेकिन उसके हाथ क्रोध से कांप रहे थे। आखो मे नमी आ गई थी, जैसे अपने गरम आसुओ को बलात् भीतर-ही-भीतर गले मे उतार लिया हो।

तभी से सरजुआ बिल्कुल खोया-खोया-सा रहता है और एक गीत की कुछ कड़िया हमेशा गुनगुनाता रहता है :

बहुत दिन कइल दुरगतिया
अबहू से मान हो संघतिया
नाही त तुरबि तोहार छतिया
अबहू से मान मोर बतिया

बिरदा को लगता है, सरजुआ अब भी उस घाव मे बुरी तरह पीड़ित है, जिसके लिए उसने अपना पहला कदम थाने पर रखा था। उसका इलाज नही हो सका। लेकिन इस घटना के दौरान उसका जो नया नामकरण हुआ, उसने उसे ताकत दी है। बिरदा मे यह जानकर वह चकित रह गया था कि जिस शब्द को वह अंग्रेजी में दी गयी गाली समझ रहा था, वह गाली नही, एक दल है। उसी की तरह अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध पहला कदम उठा चुके लोगो का दल। बिरदा को लगता है, सरजुआ अब अपना दूसरा कदम जरूर उस दल की ओर बढायेगा।

आतंक

शाम का धुधलका बहुत पहले ही गहरा गया था और गाव-गवई मे जैसा कि अक्सर होता है थोड़े ही समय गये काफी रात बीत जाने का अहसास होने लगा था। चमगादडो की उडानें कुछ पहले ही बद हो गई थी। झींगुरों की झकार सुरीली धुन पेश कर रही थी। श्मशान की-सी भयानकता लिये रात की गहरी कालिमा पूरे गाव पर काली लिहाफ डाल चुकी थी।

विलास थोडी ही देर पहले खाना खाकर बिछावन पर जा लेटा था। दिन-भर की थकान शरीर की नस-नस मे जलतरंगो की भाति फैलने लगी थी। अभी वह नीद के हल्के-गहरे झोकों मे डूबता-उतराता ही रहा होगा कि एकाएक दरवाजे पर दस्तक हुई।

'खट्'''खट्'''खटाक्।'

'कौन है भाई?' बिलास ने घबड़ाकर पूछा।

'मैं'''दरवाजा खोलो।' कडकती आवाज आई।

'मैं'''कौन? नाम बताओ।'

'मैं'''थानेदार साहब।' जवाब मिला।

'थानेदार साहब' वह बडबडाया, नही नही, यह थानेदार नही हो सकता। वह बेहद सशकित हो गया। घबडाया हुआ बिछावन पर उठ बैठा। अपनी घडी देखी। अभी मात्र नौ बज रहे थे। वह देह झाडकर उठा। घर-आगन मे नजर दौडायी। कही कोई नही दिखा। सबके सब घरो में सोये पड़े थे। अगले ही क्षण वह बिजली की तरह आगे बढा। बरामदे मे

रखे फरसे को उठाया और दरवाजे के कोने में दुबक गया। तुरन्त ही उसके दिमाग में कौतूहलपूर्ण विचार उठने शुरू हो गये। भय और निराशा की मिली-जुली आशंकाएं उसे बुरी तरह मथने लगी, दरवाजा खोलू या नहीं। खोल दूंगा तो ये डकैत घर में घुस आयेंगे। नहीं खोलूंगा तो भी चहार-दीवारी फांद आयेंगे। दरवाजे में आयेंगे तो एकाध की गर्दन तो उतारूंगा, किन्तु मैं अकेला हूं। कितने का सिर काटूंगा? डकैत बहुत संख्या में होंगे। मुझे भी जिन्दा नहीं छोड़ेंगे। सारी सपंत्ति लूट जायेगी। किन्तु घर छोड़कर भागना ठीक नहीं।

अभी वह सोच ही रहा था कि सात-आठ नकाबपोश दीवार फांद आये। सबके सब हथियारों से लैस। आते ही उन्होंने उसे चारों तरफ से घेर लिया। बिलास उन्हें देखते ही हक्का-बक्का हो गया। एकाएक इतने लोगों के आगे उसके हाथ जड़ होकर रह गये। शरीर में भय की लहर दौड़ गयी। खून पानी हो गया। बुद्धि जवाब दे गई।

अगले ही क्षण नकाबपोशों ने उसे मुश्क चढ़ाकर बांध दिया। बिलास लगातार हाथापाई करता रहा, किन्तु उन लोगों ने उसके मुंह में कपड़े ठूंस दिये। वह चिल्ला भी नहीं सका। अंततः नकाबपोशों ने उसे बांधकर जमीन पर लिटा दिया और अपने एक साथी को उसकी निगरानी में छोड़, घर में बिखर गये।

तत्काल ही घर के किवाड़ों पर कुल्हाड़ियां बरसने लगी। टाय-टाय की आवाज चारों तरफ फैल गई। घर में सोई औरतें और बच्चे तड़फड़ा उठे। वे चिल्ला उठे···

'धावऽ लोग हू होऽ।'

'डकैत लुटलन सऽ होऽ।'

'जान गइल होऽ।'

पल भर में कुहराम मच गया। औरत, बच्चे छाती पीट-पीट कर चिल्लाने लगे। मुहल्ले भर में यह शोर फैल गया किन्तु प्रत्युत्तर में कहीं से कोई आवाज नहीं आयी। मुहल्ले वाले कान में तेल डाले पड़े रहे।

जब सभी घरों के किवाड़ टूट गये, टाय-टाय की आवाज बंद हो गई, तब नकाबपोश धड़धड़ाकर घरों में घुस गये। 'ताखा-दराखा' 'भाड़-

कोठिला' आदि टकटोरने लगे। जो भी सामान हाथ लगा बाहर निकाल लाये। खटिया के नीचे से बक्सा, कोठिला के ऊपर से बटलोही, भडमर में से तसला-तसली, देगची-देगचा, थाली-परात आदि उठाये और घर से बाहर निकाल लाये। कई नकाबपोश औरतो के पीछे पड़े। उनकी तलाशी ली, कान का 'कनवाला' खुलवाया। गले की सिकड़ी निकलवाई। पैरो की पायल छीनी। औरतो ने आनाकानी, नानुकुर की, तो बदूक की कूदे से पीटी गयी।

आधे घटे के अदर ही नकाबपोशो ने रसोइयाघर, भुमहुला घर और बाबा घर सबको छान डाला। सभी सामान बाहर निकाल लाये। कुछेक नकाबपोशो ने घर की औरतो और जवान लडकियों को दबोचा। उनकी इज्जत लूटी। बूढ़ी औरते भैया बाबू कहती रही। मिन्नत करती रही। इज्जत बख्श देने की अरजी लगाती रही। पैर पकडकर गिडगिडायी। किन्तु नकाबपोशो ने किसी युवती को नही छोडा। उनकी एक न सुनी। बुढियो ने तब देवी-देवताओं को पुकारा। उन्हे गोहराया, हाय भगवान, दुहाई काली माई की, त्राहि बामत मैया। इस आफत से उबारो हे भैरव बाबा। किन्तु कोई देवता उनकी मदद मे प्रकट नही हुआ। पडोस वालो की तो बात ही अलग। वे तो घोडा बेच कर सोये थे।

इधर विलास को जमीन पर लिटा कर नकाबपोश जब उसके घर मे फैल गये, तो विलास की निगरानी मे तैनात नकाबपोश का मन मचल उठा। वह विलास को शिथिल पड़ा देख लूट मे शामिल हो गया। विलास ने मौका पाया और दातो से बधन काट दिया। वह बधनमुक्त होकर अपने छप्पर पर चढ़ा और जोरदार आवाज लगायी—

'धावऽ होऽ।'

'डकैत धन लूटलन सऽहोऽ।'

वह कई बार गला फाड़कर चिल्लाया किन्तु किसी ने उसकी आवाज नही सुनी, न प्रत्युत्तर दिया। टोले-मुहल्ले के लोग सोये पड़े रहे। विलास निराश हो गया। उसने बगल वाले छप्पर पर चढकर कुम्हार भाई को आवाज लगायी। कुम्हार भाई एक शब्द नही बोले। विलास की निराशा

'आप झूठ क्यो बोल रहे हैं, विलास जी ? डकैती आपके यहां हुई है न ?'

'नहीं हुजूर। मेरे यहा डकैती नही हुई।'

'आप फिर झूठ बोल रहे हैं विलास जी।'

'मैं बिल्कुल सच बोल रहा हू, हुजूर। ऐन मौके पर जब कोई नहीं आया तो अब आप क्या करेंगे ?'

'वाह ! आप ऐसा क्यो सोच रहे है विलास जी ? आप देखिए तो हरामजादों की कैसी हुलिया बिगाड़ता हूं। चलिए, घर के अदर चलिए। देखभाल कर लू।' दरोगा जी बोलते हुए विलास का दरवाजा पार कर घर-आगन में घुस आये। विलास दरवाजे पर ही बैठा रहा।

वे पल भर बाद मुआयना करके लौटे और डायरी पर कुछ लिखते हुए पूछा—

'विलास जी, अब बताइए। डकैत क्या-क्या ले गये हैं ?'

'कुछ नही ले गये है, सरकार।'

'आप पागल हो गये है क्या ?'

'नहीं हुजूर, मैं होश मे हू। बताकर करू गा भी क्या ? मेरी सम्पत्ति दिला देंगे आप ?'

'क्यो नही विलास जी, आपका एक-एक पाई का सामान लौटवाऊंगा। आप लिखवाइए तो सही। अच्छी तरह सोच-समझ लीजिए। इसमें आपका भला है।'

'सोच-समझ लिया है, हुजूर ! डकैत मेरा कुछ नहीं ले गये हैं। मैं कुछ नही लिखवाऊंगा।'

'अच्छा, यह बताइए किसी को पहचाना है ?'

'पहचाना तो बहुतो को सरकार। किन्तु बताऊंगा नहीं। मुझे अपनी जान से बैर नहीं। मैं किसी का नाम नहीं बताऊंगा।' विलास की आंखें एकबारगी फैल गयी।

'घबड़ाओ नहीं विलास जी, तुम्हारा कुछ नहीं होगा। सिर्फ नाम बता दो।' दरोगा जी की भाषा बदलने लगी।

नहीं हुजूर, मैं आपकी चालाकी जानता हूं। मैं उनका नाम बता दूंगा

तो आप सबको पकड लायेंगे। डरा-धमका कर दो-दो, चार-चार हजार घूस लेकर छोड देंगे और मुझे मुकदमे के चक्कर में फसाकर दो-चार हजार घूस मागेंगे। मैं कभी आपका पैर थामूगा, कभी आपके ऊपर वाले का। मेरी तो सारी सम्पत्ति लुट गई। मैं आपको घूस कहा से दूगा ? मुझे माफ कीजिए, सरकार। मैं किसी का नाम नही बताऊगा।'

'बिलास ! यह सब क्या बक रहे हो ? कुछ होश है !' दारोगा जी ने बिलास को डाटा।

'हुजूर, उन लोगो से क्यो नही पूछते जिन्होने बदूक रखते हुए एक झूठा फायर तक नही किया मै सारी रात गाव का चक्कर लगाता रहा।'

'खामोश रहो। उन्हे अपनी जान का डर नहीं है क्या ? आखिर बदूक भी तो उन्हे आत्मरक्षा के लिए मिली है।'

'यह तो आप ही जानते होंगे हुजूर कि बदूके उन्हे आत्मरक्षा के लिए मिली हैं या डकैती करने के लिए। आपको भी तो अपनी जान का डर होगा। क्यों आए हैं यहा ? बच निकलिए वरना आपको···।'

'चुप रहो बिलास, वरना हटर से चमडी उधेड लूगा। जो मैं पूछता हू, जवाब दो, अगर नही तो तुम जानो, तुम्हारा काम जाने। बाद मे शिकायत मत करना।'

'ठीक है, सरकार। मैं सब कुछ झेल लूगा। खुद निपट लूगा। आपसे कुछ शिकायत नही करूंगा।'

दरोगा जी दोनों सिपाहियों को लेकर निकल गये। पीछे-पीछे दोनों चौकीदार भी दौड पडे।

और तब से बिलास बहुत चिन्तित रहने लगा है। मन-ही-मन किसी सुरक्षित स्थान की तलाश करता है जहा रहकर वह चैन की सांस ले सके। किन्तु उसे कही भी अपना ठहराव नही दिखता।

एक बनिहार का आत्म-निवेदन

गनपतिया आज फिर मेरे गांव आया है। बहुत दिनों के बाद। लगभग एक साल पहले वह मेरे गाव आया था। पहली बार। दस-पंद्रह जनों के साथ। तब गाव के लोगो ने एकाएक उन्हें घेर लिया था। चोर-डाकू समझकर उन्हें शकाभरी नजरों से देखने लगे थे। देखते-देखते बैठका बरगद के पास एक अच्छी-खासी भीड इकट्ठी हो गई थी। लेकिन तभी गनपतिया ने कह दिया था, 'हम चोर-डाकू नही मजदूर है। मजूरी करने के लिए आपके गाव आये है। कोई काम हो तो दीजिए। कई दिनों से कोई काम नही मिला गाव मे। भूखो मरने की नौबत आ गई है।'

रमेसर सिंह ने कहा था, 'चलो, मेरा मकान बन रहा है। उसी में काम करो। जो मजूरी गाव के मजदूर लेते है, वही तुम्हे दूगा।' और गनपतिया चला गया था उनके यहा काम करने। चार रुपये रोज पर।

उस दिन से कई दिनों तक वह मेरे गाव आता रहा। अपने साथियों के साथ। काम करने। वह रोज सुबह अपने गाव से मेरे गांव चला आता। दिन भर ईंटा ढोता, गिलवा बनाता, मिट्टी फोड़ता और शाम को मजूरी लेकर अपने गाव चला जाता।

गनपतिया का गाव मेरे गाव से दूर नहीं। बगल में ही है। महज पांच-छह मील की दूरी पर। पूरब में नदी के उस पार। नदी दोनों गावों का सिवान है। उस पर गनपतिया का गाव है, इस पार मेरा। उसके गाव का नाम शिवपुर है। आबादी करीब दो हजार होगी, लेकिन इसमे आधी से

अधिक संख्या बाबू लोगो की है। कुछ घर ब्राह्मणो के है, कुछ बनियो के। शेष जनसंख्या चमारो, दुसाधो, बीनो आदि हरिजनो की है। गाव मे बाबू लोगो को ही सप्रभुता प्राप्त है। वे भूमिधर वर्ग के है। उनके पास काफी जगह-जमीन है। सबसे छोटे और गरीब भूमिधर के पास भी पन्द्रह-बीस बीघा से कम जमीन नही। उनके दरवाजो पर प्राय दो-दो भैसे, दो-चार बैल और एक गाय बधी रहती है।

गनपतिया चमार है। उसका पूरा नाम गणपतिराम है, लेकिन लोग उसे गनपतिया ही कहते है। हा, इधर कुछ लोग उसे नेताजी कहने लगे है। सहज भाव से नही, व्यग्यपूर्ण लहजे मे। वास्तव मे वह नेता है भी नही। मैंने उसे कभी नेतागीरी करते नही देखा। खादी की धोती और टोपी तो दूर, वह खादी का कुरता भी कभी नही पहनता। उसके हाथ मे कभी लेदरबैग या फाइलनुमा कोई चीज भी नही होती, जो हमारे देश के नेताओ की एक खास पहचान है। आज तक मैंने उसे कभी कोर्ट-कचहरी जाते नही देखा। न किसी के मुकदमे या नौकरी की पैरवी के लिए ही जाते देखा। वह मत्रियो के पीछे भी कभी नही दौडता। फिर मैं कैसे कहू कि वह नेता है? हा, मैं इतना जरूर जानता हूं कि इधर कुछ दिनो मे वह गावो की यात्रा करने लगा है। जिस गाव मे भी जाता है, अपने तबके के लोगो के पास जाता है। उनसे मिलता है। कुछ कहता है। कुछ सुनता है और कुछ सलाह देकर दूसरे गाव चला जाता है।

वास्तव मे गनपतिया बिल्कुल गंवार आदमी है। एकदम भूचड। फिर भी न जाने कैसे उसमे बहुत सूझ-बूझ आ गयी है। बहुत कोशिश करने के बाद वह केवल पांचवी तक पढ पाया था। फिर भी उसने यह रिकार्ड कायम किया, क्योकि उससे पहले उसके मुहल्ले में कोई पढने का नाम भी नही लेता था। पढ कर वह सारे मुहल्ले की चिट्ठी-पत्री बाचने लगा। मुहल्ले मे उसका मान बढ गया। उसके प्रति सबका प्रेम बढने लगा। सब कहते : गनपतिया इंटरेंस तक पढ गया होता तो कितना अच्छा रहता। अगरेजी भी बाच देता। लेकिन इसमे दोष गनपतिया का नही था। पढने मे कोई कमजोर नही था वह। बात यह थी कि पाचवी के बाद उसके बाबू उसे आगे पढा नही सके थे।

एक बनिहार का

एक रोज बालचन बाबू ने गनपतिया के बाबू से कहा था, 'क्यो रे रमुआ, अकेला क्यों मर रहा है? बेवजह अपना लगडा पैर घसीटता फिरता है, गनपतिया को अपने साथ काम पर क्यों नही लगाता ? अब तो वह पूरा सयाना हो गया है। क्यों नही उसे अपने साथ रखता ? और फिर, कब तक तू यह सब करता रहेगा ? आज है, कल मर जायेगा। उसे भी तो खेती-गिरस्ती के काम सिखा। पढ़ कर कौन-सा कलक्टर बन जायेगा वह ! कह दे उससे, मेरे घर रहे। मेरी भैंस चराये और ठाट से खाये-पिये, मौज करे। उसके बदले भी मैं तुझे कुछ और अनाज दिया करूंगा।'

और गनपतिया के बाबू ने अगले ही दिन गनपतिया से कहा था, 'गनपत, ठीक ही कहते है चौधरी बाबू। मेरे जीते-जी तू सभल जाये तो ठीक होगा। काम सीख जायेगा। मेरा क्या ठिकाना। आज मर जाऊं तो तुझ पर एकाएक बहुत बडा बोझ आ जायेगा।'

लेकिन गनपतिया ने बाबू को फटकारते हुए कहा था, 'तुम ही बने रहो चौधरी बाबू के गुलाम। हमसे नही होगा उनका काम। स्कूल मे कितनी अच्छी-अच्छी बाते सीखता हू, तुम्हे क्या पता ?'

रामू चुप हो गया था।

लेकिन एक दिन गनपतिया को अपने आप बालचन चौधरी के यहा जाना पडा। उस दिन बालचन चौधरी ने उसके बाबू को मारा था और गालियां देते हुए कहा था, 'शरीर से काम होता नहीं, साला जान-बूझकर मुझे परेशान कर रहा है। कितने दिनो से कह रहा हू, अब तुझमे दम नही रहा। जाकर घर बैठ और गनपतिया को अपनी जगह पर भेज दे। लेकिन मानता ही नही। तो ठीक है, तू अब मेरे यहां से जा। मुझे बहुत बनिहार मिल जायेंगे। लेकिन मेरा हिसाब चुकता कर दे।'

चुकता का नाम सुनते ही गनपतिया सन्न रह गया था। बाबू कहा से देंगे इतने रुपये ? उसने सोचा था। फिर अपने आपको चौधरी बाबू के हवाले कर दिया था।

उस दिन से गनपतिया बालचन चौधरी के यहा रहने लगा था और उसका बाबू अपने घर। गनपतिया दिन-रात चौधरी बाबू के दरवाजे पर रहता। वही खाता, वही सोता। पूरी टहल बजाता। सुबह होते ही भैंसों

की मुट्ठी छटकाता और उन्हें बगीचे में चराने ले जाता। दिन-दिन भर भैंस की पीठ पर बैठ कर बगीचे का चक्कर लगाता। तरह-तरह के गीत गाता। कभी भोजपुरिया की तो कभी बिदेसिया की तान छेड़ता। सारे चरवाहे उसे अपना मेठ समझते। उसे घेर कर पेड़ के नीचे बैठ जाते और उसे गीत सुनाने को बाध्य कर देते। बहुत ना-नुकुर के बाद गनपतिया अपनी भोज-पुरिया तान छेड़ता`

हमसे ना होई बनिहरिया
ए मालिक, कम बा मजूरिया।
हमनी गरीबवन से भैंस चरवावेल
अपना लरिकवन के पढ़के पठावेल
काहे कइल दूगो नजरिया
ए मालिक, कम बा मजूरिया।
हमनी के सतुआ मरिचवा चटावेल
अपना के दुधवा में हलुआ बनावेल
हहकत कटेला दुपहरिया
ए मालिक, कम बा मजूरिया।
रात-दिन हमनी से हर-फार करावेल
धरहीं पसेरिया से अनजा जोखावेल
खाते बीतल दिनवा सेसरिया
ए मालिक, कम बा मजूरिया।
कबले चलीहे ई बजरिया
ए मालिक, कम बा मजूरिया।
हमसे ना होई बनिहरिया```

बीच में गनपतिया की भैंस इधर-उधर लहक जाती तो दूसरे चरवाहे उसे हांक लाते। गनपतिया अपनी मस्ती में गाता रहता। लेकिन कभी-कभी कोई चरवाहा अचानक उठ खड़ा होता और हड़बड़ा कर कहता, 'अरे, अरे, गनपति भइया! चुप, चुप। वह देखो, बालचन बाबू।' और गनपतिया का गाना बन्द हो जाता।

दोपहर को गनपतिया सत्तू की पोटली खोलता। उसमें नमक मिलाकर नदी के पानी में गमछे पर ही सत्तू गाड़ता और पिंडी बनाकर सूखी लाल मिर्च के साथ निगलने लगता। सत्तू खत्म करके नदी का पानी चुल्लू में भर-भर कर पेट में पहुंचा देता। कभी-कभी उसे चौधरी बाबू के घर से बासी रोटी मिल जाती। उसे भी वह इसी तरह नमक और लाल मिर्च के साथ खा लेता।

शाम होते ही वह भैंसों को गांव की ओर लौटाता। गांव के बाहर नदी में उन्हें पैठाता। फिर पुआल के कूंड़े में मल-मल कर धोता और उन्हें बिल्कुल स्याह-चिकनी बना देता। भैंसों को सानीघर में बांध कर वह बैलों को खोल लाता। उन्हें भी मल-मल कर नहलाता। इसके बाद स्वयं नहाता और चौधरी के यहां से कुछ चना-चबेना या बचा-खुचा भोजन मांग कर खा लेता और कुट्टी काटने बैठ जाता।

इसी क्रम में अनजाने ही गनपतिया की उम्र बढ़ती गयी। वह जवान हो गया। अब उस पर चौधरी जी का कड़ा नियंत्रण रहने लगा। उसके काम का दायरा बढ़ता गया। अब वह केवल चरवाहा नहीं रहा, चौधरी जी का हरवाहा और बनिहार दोनों बन गया। वह चौधरी जी का हल चलाने लगा। उस पर उसके बाप वाला बोझ पहाड़ की तरह टूट पड़ा। चरवाही में था तो चरवाहों के साथ हुम-गा लेता था। कुछ बातें भी कर लेता था। लेकिन अब वह दिन-दिन भर हल चलाता। जाड़ा हो या गरमी या बरसात। मौसम बदलते, लेकिन उसकी दिनचर्या में कोई परिवर्तन न होता। तपती धूप हो चाहे छप्पनों कोट बरखा, उसका हल चलाना जारी रहता। हल का परिहथ पकड़े दिन भर बैलों के पीछे-पीछे चलता। उनकी पूंछ ऐंठता हुआ चिल्लाता रहता, 'आ ऽ ऽ व, आ ऽ ऽ व। दाहने से, बायें से। मुड़ जा भैया, राजा हो। चल बाबू, अब आंराईल बा...'

अक्सर उसे चरवाही की जिंदगी याद आती और अपने गीत की कड़िया याद आ जाती। 'हममें ना होई बनिहरिया ए मालिक, कम बा मजूरिया' वह खीज उठता। रोष में पैने से बैलों को पीटने लगता। लेकिन थोड़ी देर बाद ही उसकी खीज हवा हो जाती और दिन भर में दस-पंद्रह कट्ठा खेत जोत डालता। खेत जोत कर चौधरी बाबू के घर लौटता। दो

मेर खेसारी पाता और अपने घर चला जाता।

जब तक चरवाहा था, वह चौधरी बाबू के दरवाजे पर रहता था। अब की तुलना मे तब उसे कुछ आराम महसूस होता था। चौधरी बाबू भले ही हर रोज किसी-न-किसी बात पर या बिना बात के ही उसे गालिया देते। तीन-चार पुश्त तक की इज्जत छलनी कर देते। लेकिन इतनी कडी मेहनत उसे नही करनी पडती थी। खाने को भी चौधरी बाबू के घर से ही मिलता था। दिन मे भले ही उसे खेसारी का सत्तू खाना पडता, लेकिन रात मे रोटी या भात खाने को मिल जाता और वह चौबीस घटो की भूख एक ही बार मे मिटा लिया करता था। लेकिन जब से हरवाहा बना, वह केवल दो सेर खेसारी का हकदार रह गया।

अब गनपतिया भीतर-ही-भीतर जलने लगता। कभी-कभी तमतमा कर अपने पूर्वजो को गाली देने लगता। क्यों उसके बाप और दादा चौधरी बाबू की हरवाही करते रहे? क्यो उसका बाबू रामू आजीवन उनका बनिहार बना रहा? क्यो वह उनका हल जोतता रहा? क्यों सारा-सारा दिन उनके खेतो में कुदाल चलाता रहा? शाम को यही दो सेर खेसारी पाने के लिए? गनपतिया कारण समझने की कोशिश करता और देखता कि गाव का प्रायः हर चमार किसी-न-किसी चौधरी बाबू की बनिहारी करता है। उनके लिए कोई दूसरा काम नही है। हल जोतना, कुदाल चलाना, दवरी करना, रोपनी रोपना, पानी पटाना। यही सब बंधे-बधाये काम। और बदले मे शाम को दो सेर खेसारी लेकर घर चले आना। उस पर भी अक्सर गाली-गुफ्तार। मार-पीट। बेइज्जती। लेकिन कोई बोलता नही। सब आसुओ के घूट पीकर सो रहते है। बाप-दादो के जमाने से यही जिंदगी आज भी ज्यो-की-त्यो बरकरार है। क्यो है?

एक रोज गनपतिया हल जोतकर घर आया। शरीर मे जोरो का दर्द हो रहा था। कुछ ज्वर-सा महसूस होने लगा तो वह हाथ-पाव धोकर चटाई पर पड गया। लेवा ओढ कर। रामू ने उसे गरम पानी पिलाया। कडवा तेल गरम करके मालिश की। गनपतिया ने उस रात कुछ नही खाया। सोचा, थकावट के कारण ऐसा हो रहा है, जल्दी ही ठीक हो जायेगा। लेकिन अगले दिन भी उसकी तबीयत ठीक नही हुई। बुखार और

बढ़ गया। खासी भी आने लगी। वह लगातार तीन दिनो तक पड़ा रहा। बगैर कुछ खाये-पिये। परिवार को भी तीन दिनो तक उपवास करना पड़ा। घर मे अन्न का एक दाना भी नही था। कुछ था तो थोड़ा-सा आम की गुठली का आटा और थोड़ा-सा महुआ, जिसे गनपतिया की बहन बहुत जतन से बीन कर लायी थी। उसी ने आम की गुठली को सुखा कर उसके अंदर का गूदा निकाला था और जाते मे पीस लायी थी। उसी आटे की रोटी और महुआ की लपसी खाकर उन लोगो ने तीन दिन गुजार दिये।

रामू अब बेहद परेशान हो गया। गनपतिया की हालत सुधरती नजर नही आती थी। लेकिन वह कर भी क्या सकता था। बूढ़ा शरीर और पैर से लगड़ा। उसके पैर को लकवा मार गया है। और इस गाव मे वह अकेला ही लगड़ा नहीं है, उसके मुहल्ले मे कई ऐसे लूले-लगड़े हैं। एक ही साथ इतने लोगों को लकवा मार गया, यह बात सहज ही कोई स्वीकार नहीं कर सकता। लेकिन यह हुआ है। दरअसल इन लोगों को यह लगड़ापन चौधरी बाबुओं ने दिया है, जो सारी जिंदगी इन्हे खेसारी का सतुआ खिलाते रहे है। वे इन्हे बनिहारी मे खेसारी देते रहे हैं और ये सारे परिवार के साथ खेसारी का पपरा खाते रहे हैं। जिसे बड़े लोग कभी नही खाते, उस साठी या सेनी चावल का भात भी इन्हे जिंदगी मे कभी-कभी ही खाने को मिला है। और लगातार खेसारी खाने का नतीजा यह है कि रमुआ का टोला लूलों-लंगड़ों से भर गया है। हर साल किसी-न-किसी को लकवा मारता है और वह चटाई पकड़ लेता है।

रामू अपाहिज पड़ा है। गनपतिया की बूढ़ी मां और छोटी बहिन मातिनरी आजकल बेकार हैं। धान के दिनो में धान काटती हैं, बोझा बाधती है, फिर उसे एक मील दूर खलिहान में पहुचाती हैं। तब कहीं बीस बोझा पर एक बोझा धान उन्हें मिल पाता है। लेकिन इन दिनों तो उनकी कमाई भी खत्म हो चुकी है। कोई करे तो क्या करे?

चौथे दिन चौधरी बाबू का चरवाहा दुखिया आया और चिल्ला कर गनपतिया को पुकारने लगा। गनपतिया लस्त-पस्त पड़ा था। उठ नहीं सका। रामू लंगड़ा पैर घसीटते हुए मड़ई से बाहर निकला। दुखिया को देखते ही समझ गया कि चौधरी बाबू ने गनपतिया को बुलाया है। दुखिया

कुछ कहता कि रामू ने उसे खीच कर गनपतिया के पास पहुचा दिया।

गनपतिया को जमीन पर पड़े देख दुखिया ने पूछा, 'क्यो गनपत भैया, क्या हो गया है ?'

'देख ही रहे हो भाई। ज्वर से मर रहा हू। कई दिनो से कुछ खाया-पिया नही।' गनपतिया धीरे से बोला।

'लेकिन चौधरी बाबू ने तुमको बुलाया है। बडी भद्दी-भद्दी गालिया दे रहे थे। कह रहे थे—साले को मै पहचान गया हू। वह काम नही करना चाहता है। दो-चार क्लास पढ क्या गया, साले को गरूर हो गया है। जाकर बुला लाओ उसे।'

'जाओ कह देना, गनपतिया बीमार है।' गनपतिया ने कहा।

दुखिया चला गया। उसने चौधरी बाबू से जाकर कह दिया, 'गनपतिया बीमार है। मैंने उसे अपनी आखो से देखा। पडा हुआ था अलस्त होकर।'

सुनते ही चौधरी बाबू तमतमा गये और बकने लगे, 'खेती की ताव आती है, तभी साला बीमार पडता है। शेप महीने इसे कुछ नही होता। नखरा करता है कि बीमार है। ऐसे ही बीमारी होती रही तो हम अच्छी खेती कर लेंगे। ठहरो मैं जाता हू।'

गनपतिया के घर पहुचते ही चौधरी बाबू गालियो की बौछार करने लगे, 'साले नमकहराम, इतने दिनो मे हमारा अनाज खा रहा है, अब देह पर चरबी चढ गयी है ? और सब अपनी खेती मे लगे हुए हैं और तू बहाना बना कर सोया हुआ है ! कमीने, जिस पत्तल मे खाता है, उसी मे छेद करता है। हमारी खेती पिछडती जा रही है और तुझे शर्म नही आती कि क्यो मै गद्दारी कर रहा हू ?'

बीमार गनपतिया चुपचाप पडा रहा। चौधरी बाबू की गालिया सुनता रहा। उसके मन मे बार-बार एक तूफान उठता। वह चाहता था, कह दू कि मैं तेरा गुलाम नही हू। मैंने तेरा अनाज खाया है कि तू मेरे बाप-दादो तक की कमाई खाता रहा है ? चरबी मेरी देह पर नही, तेरी देह पर चढी है। मेरे शरीर पर चरबी चढी होती तो यो बोल कर निकल नहीं जाता, मै तेरा गला फोड देता।

लेकिन वह कुछ बोल नही सका। चुप पडा रहा। उसके दिमाग मे पुरानी घटनाएं आने-जाने लगी। अब तक वह बहुत-सी वारदातें देख चुका था।

जब गनपतिया चौधरी बाबू का चरवाहा था, उसने अपनी नगी आखो देखा था कि चौधरी बाबू ने पशुपतिया और शिवचरना को मारते-मारते बेदम कर दिया था। बगैर किसी कारण के। उन लोगो का दोष सिर्फ यही था कि वे चौधरी का हल चलाना नही चाहते थे। चाहते थे कि कही शहर भाग जाये। लेकिन ज्योही चौधरी बाबू को यह पता चला कि उनके हलवाहे गांव छोडने की सोच रहे है, उन्होने दोनो को बुलाकर खूब पीटा। लाठी से उनका गतर-गतर थूर दिया था। आज भी जब पुरवैया बहती है, उनकी रग-रग मे दर्द उखड आता है। चौधरी बाबू जब उनकी पिटाई कर रहे थे, सारे बबुआन उनकी हा मे हां मिला रहे थे और सारे चमार सहमे हुए थे। उनकी जबान बंद थी।

उस दिन की घटना भी गनपतिया को याद आने लगी जब सुशील चौधरी ने गनपतिया के चाचा की लडकी कबूतरी से बलात्कार किया था। वह कटनी करने जा रही थी नदी के उस पार वाले खेतो मे। और सुशील ने उसे गेहूं के खेत मे पटक दिया था। वह छटपटाती रह गयी थी। चिल्लाती रह गयी थी। और जब गनपतिया के चाचा ने चौधरी बाबू से शिकायत की, चौधरी बाबू ने उन्हें कोठरी मे बंद करके पीटा था।

यही नहीं, खटिया पर बैठने या काठ की चटाकी पहनने के कारण भी न जाने कितनी बार गनपतिया के मुहल्ले वाले पीटे गये। उनसे थुकवा कर चटवाया गया।

यह सब देख-देख कर गनपतिया के मन मे शूल उठता था, लेकिन वह उसे दबा लेता था। उन दिनो वह कुछ कर नहीं सकता था। उसका मन उदास हो जाता था।

पता नही चौधरी बाबू गालियां बक कर कब चले गये थे। गनपतिया अतीत के दायरो से निकल कर वर्तमान मे आ गया। उसने एक बार अपने शरीर को निहारा। उस पर हाथ फेरा और एकाएक जमीन से उठ खडा हुआ। न जाने कहा से उसके शरीर में अपार शक्ति आ गयी। वह अपनी

आखो को पोछता हुआ मडई मे बाहर निकल आया और चल पडा अपने मुहल्ले की ओर। रामू पूछता रहा, 'कहां जा रहे हो गनपति? सुनो तो जरा! अरे पगले, अभी बाहर मत जा। काफी कमजोरी है तुझे। हवा लग जायेगी। अभी-अभी बुखार उतरा है, फिर चढ जायेगा।' लेकिन गनपतिया ने अनसुनी कर दी।

चलते-चलते उसके होंठ अपने-आप खुल गये और एक आवाज निकल पडी, 'यो तो यह तेज बुखार जीवन भर नही छोडेगा। कब तक पड़ा रहूंगा? मरना ही है तो चल-फिर कर मरूगा, ताकि कोई यह न कह सके कि गनपतिया जान-बूझ कर मरा, अगर वह चाहता तो रोग का निदान हो सकता था। फिर कमजोर कहा हू मैं? तुम लोगो ने मुझे कमजोर कह-कह कर ही और कमजोर बना दिया। कमजोरी तो कम रही, कमजोर कहने वाले अधिक रहे। अब मैं ठीक हू। देख लूंगा सब बीमारियो को।'

वह बारी-बारी से सबकी झोपडियो मे गया। सब लोगों से मिला। सबको उसने बुरी तरह फटकारा। ललकारा भी, 'मैं कहता हूं, छोड दो बनिहारी करना। हल जोतना, कुदाल चलाना। दिन-दिन भर मरते हो। शीत-ताप सहते हो। लेकिन मिलता क्या है? शाम को दो सेर खेसारी। क्या हम लोग केवल खेसारी ही उपजाते है? गेहूं नही उपजाते? चना नही उपजाते? धान या अन्य फसलें नही उपजाते? फिर क्यो हमें सिर्फ खेसारी ही मिलती है? यह खेसारी हम लोगों के बीज को नेस्तनाबूद कर रही है। सबके सब लूले-लगड़े होते जा रहे हैं। खाने को पेट भर अनाज नही मिलता। बीमारी में दवा की एक टिकिया नही मिलती और न तन ढकने को कपडा ही। क्या हम आदमी नही हैं?'

'लेकिन गनपति भैया, बनिहारी बंद करने का नतीजा बहुत बुरा होगा। वे लोग हमें गोली से उडा देंगे। तुम्हें याद नही वह दिन जब इसी बात के लिए उन लोगो ने मेरे भैया को लठिया दिया था। वे भी तुम्हारे जैसी ही बातें सोचा करते थे।' मोहना ने गनपतिया की बातों का खडन किया।

'ठीक कहते हो मोहन, आखिर काम बंद करके हम लोग खायेंगे क्या? अपनी खेती-बारी तो है नही। अत मे लात-घूसे खाकर उन्ही के पैरो पर

गिरना पड़ेगा।' धनेमरा ने मोहना का समर्थन किया।

चमरटोली के कुछ लोगों ने भी गनपतिया की बातों पर आपत्ति की। खून-खराबी का अंदेशा प्रकट किया। उन लोगों ने गनपतिया को ही समझाया, 'छोड़ो गनपति, इसी रफ्तार में गाड़ी चलने दो। नहीं तो हो सकता है कि ज्यादा तेज दौड़ने पर गाड़ी उलट भी जाये।'

लेकिन गनपतिया उनसे प्रभावित नहीं हुआ। उन्हें बार-बार समझाया, 'क्यों डरते हो मरने से! मौत तो एक दिन आयेगी ही। कुछ तो अगली पीढ़ी के लिए करो।' वह कई घंटों तक उन्हें समझाता रहा। बाप-दादों से लेकर आज तक की स्थितियों को उभारता रहा। अंततः उसकी उम्र के बनिहार उसकी बातों को सुनकर तैश में आ गये। उनके चेहरे तमतमा उठे। ऐसा लगा, जैसे उनकी सुषुप्तावस्था टूट गयी। सबने मिलकर तय कर लिया कि अगले दिन से बनिहारी बन्द रहेगी। सबके सब दूसरे गांव चलेंगे मजदूरी करने।

गनपतिया की यह बात चमरटोली के बूढ़ों को गवारा नहीं हुई। वे हैरत में पड़कर बड़बड़ाने लगे, 'अजब है यह रमुआ का छोकरा। हमेशा कुछ-न-कुछ खुराफात सोचता रहता है। अब चमरटोली को उजाड़ने पर तुल गया है।' लेकिन कड़वी असलियत को वे जानते थे। भीतर-ही-भीतर उन्हें गनपतिया की बातों से सुख मिलता था। लेकिन यह सोचकर वे बुरी तरह परेशान हो जाते कि गनपतिया को इस खुराफात का अंजाम क्या होगा। वे उसे सड़ी-गली गालियां बकने लगते।

'हरामजादा हम लोगों को गांव से निकलवाने पर तुला है। चैन से जीने नहीं देगा। खुद तो जायेगा ही, दूसरों को भी साथ ले जायेगा।' मोहना के पिता ने उसे फटकारते हुए कहा, 'गनपतिया, चले जाओ यहां से। हमारा मोहना नहीं जायेगा। उन लोगों को पता चल गया तो कल ही बनी-बनायी झोपड़ी में आग लगा देंगे। बसी-बसायी जिंदगी उजाड़ देंगे। वे हमारे मालिक हैं, हम उनकी परजा। उनकी सेवा करना हमारा फर्ज है। भगवान ने ही हम लोगों को नीच बना दिया तो इसमें उनका क्या कसूर! जो हमारे करम में लिखा है, सो तो भुगतना ही है। जैसी करनी, वैसी भरनी। पूरब जनम की कमाई है यह सब।"

लेकिन बूढो के विरोध के बावजूद सभी बनिहार अपने फैसले पर अडिग रहे ।

उसके अगले ही दिन सुबह गनपतिया हमारे गाव आया था । पहली बार । कई लोगो के साथ । मजदूरी करने । लेकिन शाम को वह अपने गाव लौटा तो उसने देखा, सारे गाव मे एक गरम हवा फैली हुई है । लगता था, तुरन्त ही कोई महाभारत छिडने वाला है । अपने घर के दरवाजे पर पहुच-कर गनपतिया ने देखा, दस-बारह चौधरी बाबू खडे है । उसे देखते ही गालियो की वर्षा शुरू हो गयी । रामू उन लोगो के पैरो पर गिर पडा, लेकिन वे दनादन उसे पीटने लगे । उनमे से कुछ लोग उसकी झोपडी की ओर बढने लगे । लेकिन तभी गनपतिया के साथियो का दल वहा आ पहुचा । उन्हे देखते ही चौधरी बाबुओं का क्रोध भडक उठा । वे गनपतिया पर टूट पड़े थे ।

लेकिन गनपतिया भी उस दिन चुप नही रहा । पीटने वालो के विरुद्ध उसके भी हाथ उठ गये । जवानी तकरार विकराल युद्ध मे परिणत हो गयी । गनपतिया के मुहल्ले से लाठिया निकल पड़ी । चौधरी बाबुओं ने अपनी बन्दूके सभाल ली । अधेरी रात मे गोलियो की धाय-धाय की आवाज फैल गयी । पता नही कितनी गोलिया छूटी । पता नही, कितने छर्रे उडे और गनपतिया के दल के बनिहारो के अगो मे जा घुसे । वे कराहते हुए जमीन पर पसर गये । खून की धारें फूट पडीं ।

लेकिन उस अधेरी रात के बाद दूसरी सुबह जब सूरज उगा, उसके प्रकाश मे एक नयी चमक थी । गनपतिया के दल ने हार नही मानी । धीरे-धीरे उनके साथी ठीक हो गये । अब वे तन कर चलने लगे थे । वर्षो से जमा कुहासा उस दिन साफ हो गया था और वे इलाके के गावो मे मजदूरी करने लगे थे ।

इस बीच गनपतिया को कई बार बाबू लोगो ने धमकाया । उसे मारने की कोशिश की लेकिन वह समझौता करने को तैयार नहीं हुआ । गाव की बनिहारी बन्द रही ।

अतत: जब चौधरी लोग बनिहारो को मार कर, पीट कर, गालियां देकर थक गये और उन्हे अपना हल खुद चलाने की नौबत आ गयी तो वे

परेशान हो उठे। खेती पिछड गयी। हारकर उन लोगों ने स्वीकार कर लिया कि बनिहारो को नकद मजदूरी दी जायेगी। खेसारी के बदले सभी अनाज बदल-बदल कर दिये जायेगे। काम के समय उन्हें कुछ जलखावा भी दिया जायेगा और वे इच्छानुसार जिसके यहा चाहे, काम कर सकेंगे। इन्ही शर्तो पर गनपतिया ने समझौता किया और सभी बनिहार पुनः गाव की बनिहारी करने लगे।

गनपतिया ने अपने साथियो और गाव वालों से कहा, 'यह काफी नही है, फिर भी जीवन मे पहली बार हमने कुछ पाया है। हमारी जीत हुई है।'

उस दिन के बाद गनपतिया अब दूसरे गावो की यात्रा करने लगा है। सगठित सघर्ष से जीत हासिल हो सकती है, यह बात उसके मन मे गहरी पैठ गयी है। यह बात वह औरो के मन मे भी पैठा देना चाहता है। शायद वह इसी सिलसिले मे आज मेरे गांव आया है। सभव है, वह कल आपके गाव भी जाये।

मुझे विश्वास है, गनपतिया आपको भी जचेगा। जहां तक हो सके, आप उसकी मदद कीजिएगा, क्योंकि उसकी लडाई अपने लिए नही, बल्कि हम और आप जैसे बनिहारो के लिए है। एक बनिहार की ओर से राष्ट्र के तमाम बनिहारो को यह मेरा निवेदन है।

□□